# ३. तृतीय अध्याय

# हिन्दी कथा साहित्य और भीष्म साहनी

३.१ : प्रस्तावना

३.१.१ : परिभाषा

३.१.१.१ : एच.जी.वेल्स

३.१.१.२ : डॉ. श्याम सुन्दरदास

३.१.१.३ : डॉ. मुन्सी प्रेमचन्दजी

३.१.२ : हिन्दी कहानी – उद्‌भव और विकास

३.१.२.१ : प्रसाद प्रेमचंद युग

३.१.२.२ : परवर्ती युग

३.१.२.३ : स्वातंत्र्योत्तर युग बनाम विभिन्न आंदोलन

३.१.२.३.१ : नई कहानी

३.१.२.३.२ : सचेतन कहानी

३.१.२.३.३ : सहज कहानी

३.१.२.३.४ : समकालीन कहानी

३.१.२.३.५ : सक्रिय कहानी

३.१.२.३.६ : अकहानी

३.१.२.३.७ : समान्तर कहानी

३.१.३ : हिन्दी कहानी साहित्य और भीष्म साहनी

३.१.४ : साहनीजी की कहानियों का वर्गीकृत अध्ययन

३.१.४.१ : राजनैतिक कहानियाँ

३.१.४.२ : सामाजिक कहानियाँ

३.१.४.३ : धार्मिक कहानियाँ

३.१.४.४ : आर्थिक कहानियाँ

३.१.४.५ : बोधपरक कहानियाँ

३.१.५ : निष्कर्ष

४.४.१ : हिन्दी उपन्यास साहित्य और साहनीजी

४.१.१.१ : हिन्दी उपन्यास – उद्‌भव एवं विकास

४.१.१.२ : विकास : प्रेमचन्द पूर्व युग : १८८२ से १९१६ तक

४.१.१.३ : प्रेमचन्दयुग सन १९१३ से १९३६

४.१.१.४ : प्रेमचंदोत्तर युग : सन् १९३६ से अब तक

५.१.१ : उपन्यास के तत्व

५.१.२ : हिन्दी उपन्यास : विषय – वैविध्य

५.१.३ : साहनीजी के उपन्यास

५.१.३.१ : सामाजिक उपन्यास

५.१.३.१.१ : झरोखे

५.१.३.१.२ : कड्याँ

५.१.३.१.३ : बसंती

५.१.३.१.४ : कुंतो

५.१.३.२ : सांप्रदायिक उपन्यास

५.१.३.२.१ : तमस

५.१.३.२.२ : नीलू नीलिमा नीलोफर

५.१.३.३ : घटनाप्रधान उपन्यास

५.१.३.३.१ : मैयादास की माडी

६.१.१ : निष्कर्ष

# ३. तृतीय अध्याय

# हिन्दी कथा साहित्य और भीष्म साहनी

## ३.१ : प्रस्तावना

मनुष्य का प्रारंभिक साहित्य कथा–प्रधान रहा है । उस समय कथा किसी घटना का रोचक वर्णन नहीं थी । वह मात्र मनोरंजन प्रदान करने का साधन भी नहीं थी, बल्कि मानव जीवन के दैनिक व्यवहार में दृष्टांत और उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती थी । कथा की यह प्रवृत्ति उत्यधिक लोकप्रिय थी । छोटे बच्चे अपनी दादी–नानी से प्रौढ और युवक कथावाचकों से कहानियाँ सुना करते थे । हमारी प्राचीन साहित्य, वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि तथा बौद्ध एवं जैन धर्मग्रंथो में जातक कथाओं उपकथाओं की भरमार मिलती है । इनमें उपलब्ध कहानियों का उद्देश्य नीति की शिक्षा प्रदान करना था, जिनसे मनोरंजन भी हो जाता था । युग के बदलाव के साथ–साथ आज के कहानी साहित्य में मानवीय संवेदनाओं, उसकी क्षमता विषमताओं आदि का चित्रण होने लगा है । क्योंकि कहानी साहित्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की समस्याओं को परस्पर समान संबंधो में पड्कर जीवन बिताने के माध्यम से दर्शन करने का एक विशेष प्रकार का कलात्मक रूपविधान है । डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना कहानी के विषय में लिखते है, ''कहानी मानवीय संवेदना की घटनात्मक अभिव्यक्ति का नाम है। इसें कहानीकार जीवन के किसी एक तथ्य या मर्म की अभिव्यंजना करता है, जीवन के किसी लक्ष्य का उद्‌घाटन करता है, अपनी आन्तरिक अनुभूति को वाणी देता है और अपने भोगे हुए क्षणों को घटनात्मक स्थितियों के माध्यम से व्यक्त करता है ।'' इस तरह कहानी मानव–जीवन की घटनाओं और संवेदनाओं के साथ जुडी हुई है । हिन्दी में कहानी का विकास अत्यंत विशाल एवं सराहनीय हुआ है । हिन्दी, कहानी के इतिहास पर एक दृष्टि की जाए ।

### ३.१.१. : परिभाषा

कहानी की परिभाषा हिन्दी एवं पाश्चात्य विद्वानो ने भिन्न–भिन्न रूप से दी है । पाश्चात्य एवं हिन्दी के कुछ विद्वानो की परिभाषाएँ देखे । यथा, –

### ३.१.१.१ : एच.जी.वेल्स

एच.बी.वेल्स ने कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है कि :

"Aiction that can be read in an hour"

अर्थात् ''कहानी ए विद्या है, जो एक घंटे में पढी जा सके ।''

### ३.१.१.२ : डॉ. श्याम सुन्दरदास

हिन्दी के समर्थ आलोचक डॉ. श्यामसुन्दरदास ने कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है, ''आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है। 'द इस परिभाषा में श्यामसुन्दरदासजी ने कहानी के लघु आकार और उसकी नाटकीयता पर भार दिया है ।

### ३.१.१.३ : मुन्सी प्रेमचन्दजी

उपन्यास सम्राट मुन्सी प्रेमचन्दजीने कहानी की विशेषता बताते हुए लिखा है, ''कहानी एक ऐसा रमणीय उद्यान नहीं हैं, जिसमें भाँति–भाँति के फूल, बेल–बुटे सजे हुए है, बल्कि एक ऐसा गमला है, जिसमें एक ही पैाधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है ।'' इससे यह संकेत मिलता है कि कहानी का आकार तो छोटा है, परंतु उस छोटे आकार में ही वह परिपूर्ण होती है और कला की पूर्णता भी पायी जाती है । प्रेमचंदजी ने इसके अतिरिक्त कहानी की विशेषता को बताते हुए आगे लिखा है कि, 'कहानी तो कटे–छटे हीरे के सौंदर्य की झलक मात्र है, कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल के प्रारंभ होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा को दिखा देता है । ''इसमें प्रेमचन्दजी के कहानी की गति की तीव्रता पर प्रकाश डाला है ।

ऐसे ही एक अंग्रेज लेखक ने तो कहानी की परिभाषा देते हुए यहाँ तक कहा है कि, ''A story is like a horse, it is the start and finish that count most'' अर्थात् ''कहानी तो घोडे की सरपट दौड है ।'' हम अभी गिनना शुरू करते है, तभी दौड पूरी हो जाती है ।'' इसका तात्पर्य यह है कि कहानी प्रारंभ होती है और बडी द्रुत गति से अपने गंतव्य पर पहुँच जाती है । इन सभी परिभाषाओं को मिलाकार अगर कहानी की कोई छोटी परिभाषा दी जाय तो कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ''जगत और जीवन ही कहानी है ।''

### ३.१.२ : हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास

वैसे तो मानव–समाज में कहानी कहने और सुनने की प्रवृति आदिमकाल से चली आ रही है और प्राचीन भाषाओं के साहित्य में इसकी परंपरा भी सुरक्षित है, किन्तु हिन्दी में कथा साहित्य का आविर्भाव २०वी शताब्दी की देन है । श्री जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल खिते है, 'सहिन्दी में प्रारंभ के समय कहानियों का रूप अंग्रेजी और संस्कृत से नाटको एवं कहानियों का रूपांतर मात्र ही था । इन कहानियों का उद्देश्य केवल लोकरंजन ही था, अत: इन कहानियों में लोक रंजन तत्त्व का प्राधान्य है । उन लेषधों ने अंग्रेजी और संस्कृत नाट्य एवं कथासाहित्य से ऐसे ही प्रसंगो की कथाओं को चुना है, जिसमें कथानक का विकास दैवी घटनाओं और संयोग से होता है और इस प्रकार पाठकों की कुतूहल वृत्ति को विकसित करके चरमबिंदु तक ले जाकर उसकी संतुष्टि का प्रयत्न है । धीरे–धीरे हिन्दी में मौलिक कहानियों का सृजन होने लगा और अस्वाभाविक एवं अतिमानुषिक प्रसंगो से भरी कहानियों का स्थान जीवन में घटित होनेवाली साधारण घटनाओ को लेकर चलनेवाली कहानियों ने ले लिया । यहीं से आधुनिक युग की हिन्दी की साहित्यिक कहानी का प्रारंभ माना जा सकता है । (२)

भारतीय साहित्य में वेदों, उपनिषदो, सनस्कृत और बौद्ध जातकों में अनेक कहानियाँ देखने को मिलती है । हिन्दी के मध्ययुग में भी कई कहानियाँ लिखी गई, जिनपर फारसी के वासनात्मक प्रेम का प्रभाव स्पष्ट है । कुछ आलोचकों ने इन्शा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी माना है, किन्तु सच यह है कि उसमें आधुनिक कहानी

के लक्षण ठीक नहीं बेठते । इसमें मध्यकालीन किस्सागोई की स्पष्ट छाप है और एक अजीब सी सामाजिक तटस्थता है । इन कहानियो मेन आधुनिक कहानी की किसी अविच्छिन्न परंपरा का प्रवर्तन भी नहीं हुआ । इस संदर्भ में श्री राजनाथ शर्मा लिखते है आधुनिक कहानी समाज के प्रति प्रतिबद्ध है । परंतु हिन्दी की ये पुरानी कहानियाँ अपने सम–सामयिक समाज से तटस्थ और उदासीन थी, क्योंकि ये प्राचीन कथा ग्रंथो का ही रूपांतर मात्र थी और इनके लेखकों में वह सामाजिक चेतना नहीं थी जो प्राचीन कथानको को अपने सम–सामयिक संदर्भ में रूपायित करने की प्रेरणा प्रदान करती है । ये कहानियाँ एक प्रकार से प्राचीन नीति वाक्यों का कथात्मक रूपांतर मात्र थी, इसलिए उनमें सम सामयिक चित्रण उपेक्षित रहा । अत: उन्हें आधुनिक अर्थ में कहानी नहीं माना जा सकता ।''[३] सन् १९०० में प्रयाग में 'सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसमें अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई गौस्वामी किशोरीलाल की 'इन्दुमती', 'गुलबहार', मास्टर भगवानदासकी 'प्लेग की चुडैल', रामचन्द्र शुकल की 'ग्यारह वर्ष की समय', 'गिरजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी', 'बंग महिला की दुलाइरवाली', वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखी बन्ध भाई', मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला', 'निन्यान्वे का फेर', आदि । हिन्दी के कुछ विद्वानो ने गोस्वामी किशोरीलाल की 'इन्दुमती' को हिन्दी की सर्वप्रभम कहानी स्वीकार किया है, जबकि कतिपथ अन्य विद्वानोने उक्त कहानी पर शैक्सपीयर के 'धी टैम्पैस्ट' नाटक का अत्याधिक प्रभाव दर्शाते हुए बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी को हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी सिद्ध किया है । श्री शिवकुमार शर्मा इस संदर्भ में लिखते है, ''इस विवाद में न पड्ते हुए यह कहा जा सकता है कि उक्त सभी कहानियों में आधुनिक कहानी के तत्त्व सम्यक रूप से सन्निविष्ट नहीं है और न इनसे आधुनिक कहानी के विकास में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान मिला है । इस प्रयोगात्मक युग में हिन्दी साहित्य के अंगो के समान कहानी क्षेत्र में भी अनुवादों और अनुकरणात्मकता की प्रवृत्ति का प्राधान्य रहा, न तो आरंभ के इस काल में इस क्षेत्र में किसी नवीन प्रतिभा का उदय हुआ और न ही किसी मूल्यवान रचना की सृष्टि। अंग्रेजी, संस्कृत तथा बंगला साहित्य की कहानियों का अनुवाद धडाधड हुआ । वस्तुत: आधुनिक हिन्दी कहानी के श्री गणेश और उसके विकास का इतिहास प्रसाद और प्रेमचंद के उदय से संबद्ध है ।''[४] इस तरह

देखा जाय तो हिन्दी कहानी के प्रारंभिक समय में जो कहानियाँ लिखी गई, वो कहानियाँ सामाजिक जीवन में घटित होनेवाली साधारण घटनाओं पर आधारित है । निमें कल्पना और यथार्थ का मिश्रित रूप मिलता है । हिन्दी कहानी साहित्य का आरंभ यथार्थवादी कल्पना – प्रसूत कहानियों द्वारा हुआ । इनमें दैवी घटनाओं और संयोग को प्रमुख स्थान दिया गया । कुछ समय तक इसी प्रकार की कहानियाँ लिखी जाती रही । यह काल एक प्रकार से हिन्दी कहानी की प्रगति को हम तीन कालों में विभाजित कर सकते है ।

१) प्रसाद प्रेमचंद युग

२) परवर्ती युग

३) स्वातंत्र्योत्तर युग

हिन्दी कहानी साहित्य में ये तीनों काल महत्वपूर्ण भूमिका निभाये हुए है । इन कालों को विस्तृत रूप से देखा जीया ।

### ३.१.२.१ : प्रसाद प्रेमचंद युग

सन् १९११–१२ से लेकर प्रवर्तमान अत्याधुनिक युग तक हिन्दी कहानी साहित्य विषय व्यापकता, गंभीरता, कलात्मकता एवं शिल्प–विधान की दृष्टि से अत्यंत समृतद्ध तथा उच्च बन पाया है । इसकी उच्चा तथा समृद्धि में शताधिक प्रतिभाओं तथा उनकी अमूल्य कृतियों ने योगदान दिया है । इन महान प्रतिभाओं में दो नाम महत्त्वपूर्ण माने जाते है, श्री जयशंकर प्रसाद एवं मुन्शी प्रेमचंदजी । हिन्दी कहानी के विकास में एक महत्त्वपूर्ण मोड जयशंकर प्रसाद की 'इन्दु' मासिक पत्रिका में सन् १९११ में प्रकाशित 'ग्राम' नामक कहानी से उपस्थित होता है । श्री राजनाथ शर्मा लिखते है, ''हिन्दी कहानी कला के विकास की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशंकर प्रसाद, 'सरस्वती', द्वारा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और 'अल्पमाला' द्वारा इलामचन्द जोशी के अभ्युदय ने, समष्टि रूप से हिन्दी कहानी के एक नए और अपूर्व स्वस्थ युग द्वारा को खोला । 'इन्दु' के प्रकाशन के द्विवेदीकालीन एकरसता के अन्त का आभास दिया । रचनात्मक साहित्य के लिए यह पत्रिका अत्यंत उर्वर प्रमाणिक हुई । प्रसाद के इस क्षेत्र में आने से हिन्दी कहानी का

भाग्य चमक उठा।''[५] प्रसादजी की कहानियों के पाँच संग्रह उपलब्ध है, 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', और 'इन्द्रजाल' । इनकी प्रारंभिक रचनाओं पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट है। प्रसादजी मूलत: प्रेम और सौंदर्य के कवि है । अत: उनकी यह काव्यात्मकता नाटकों के समान कहानियों में सर्वत्र मिलती है । उनकी कहानी कला के संबंध में श्री शिवकुमार शर्मा लिखते है – ''प्रसाद के भावमूलक परंपरा के अधिष्ठाता होने के नाते उनकी कहानियों में स्थूल समस्याओं का अंकन कम हुआ है । उनमें भावनाओं की सूक्ष्मता और वातावरण की सघनता है । उनकी कहानियों में घटनाचक्र धुँधला ही रहता है । कथानक की स्थूल रेखायें उभर नहीं पाती, पर वातावरण की सघनता में पात्र हमारे आंतरिक मर्म को छूते हैं । इनकी कहानियों में आदर्श और भारतीय दर्शन का समन्वय मिलता है । भावुकता की दृष्टि से हिन्दी कहानी क्षेत्र में प्रसादजी का स्थान विशिष्ट है ।''[६] प्रसादजी के समये के अन्य उल्लेखनीय कहानीकारो में राधिकारणम प्रसादसिंह (कानों में कंगना), विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक 'रक्षाबंधन', ज्वालादत्त शर्मा ('विधवा', 'तस्कर') आदि है ।

प्रेमचंदजी उपन्यास क्षेत्र में जितने महान है, कहानी क्षेत्र में उससे भी कहीं अधिक महान है। वे कहानी क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा के प्रतिष्ठापक है, जबकि प्रसादजी भावमूलक परंपरा के । प्रेमचंदजी ने उर्दू में कहानियो लिखना बहुत पहले आरंभ कर दिया था, परंतु हिन्दी में उनकी सर्वप्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रसादजी की 'ग्राम' कहानी से पाँच साल बाद में प्रकाशित हुई । हिन्दी में प्रेमचन्दजी ने तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी जो कि लगभग बीस–पच्चीस संग्रहो में प्रकाशित हुई। प्रेमचंदजी एकमानवतावादी एवं उपयोगितावादी कहानीकार है । उनकी सभी प्रकार की घटना प्रधान, चरित्र–प्रधान, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कहानयिां सोद्देश्य है। विषय व्यापकता चरित्र–चित्रण की सुक्ष्मता, विचार एवं भावगंभीरता, प्रवाहपूर्ण सुवोधशैली, मुहावरामयी जबानदानी एवं लोक संग्रह की भावना से प्रेमचन्दजी की कहानियाँ अद्वितीय बन पडी है। उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ 'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम', 'बडे घर की बेटी', 'शरतंज के खिलाडी', 'वज्रपात', 'रानी शारंध्री', 'अलग्योज्ञा', 'ईदगाह', 'अग्नि समाधि', 'पुस की रात', 'सुनान भक्त', 'कफन' आदि पर

हिन्दी जगत को गर्व है और इन्हें विश्व की श्रेष्ठ कहानियों की तुलनामें नि:संकोच रखा जा सकता है । प्रेमचंदजी की कहानियों के विषय में श्री गणपतिचन्द गुप्त लिखते है, ''प्रेमचंदजी की कहानियों में जन–साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का चित्रण मार्मिक रूप से हुआ । वे साधारण से साधारण बात को भी मर्म स्पर्शी रूप प्रस्तुत करने की कला मे सिद्धहस्त थे । उनकी शैली में ऐसी सरलता, स्वाभाविकता एवं रोचकता मिलती है, जो पाठक के हृदय को उद्‌लित करने में समर्थ हो सके । उनकी सभी कहानियाँ सोद्देश्य है । भाव और विचार, कला और प्रचार का सुन्दर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रेमचन्द का कहानी साहित्य है ।''[७]

प्रेमचंदजी के समकालीन कहानीकारों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान हिन्दी कहानी में बहुत ऊँचा है । गुलेरीजी केवल तीन कहानियाँ, बल्कि केवल एक कहानी 'उसने कहा था' को लिखकर हिन्दी जगत में अमर हो गए है ।' उसने कहा था' विश्व विख्यात कहानियों में से हक है और हिन्दी कहानी परंपरामें एक माईलस्टोन है । अन्य कहानीकारो में पं.बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन' ('हार की जीत'), पांड्येय बेचेनशर्मा 'उग्र' ('चिनगारियाँ'), आचार्य शास्त्री ('रंजकरण', 'अक्षत'), सियाराम शरण गुप्त ('मानुषी'), राधिकारमण प्रसादी सिंह ('गांधी टोपी'), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ('लिली', 'सखी', 'चतुरीचमार') इत्यादि है इस प्रकार हम देखते है कि प्रसाद – प्रेमचंद युग के कहानी साहित्य में सामाजिक समस्याओं को ही प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है । इनमें पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का चित्रण हुआ है । शैली की दृष्टि से इस युग की कहानियाँ प्राय: सुगठित एवं संतुलित है । इस युग के कहानीकारों की कहानियों ने अपनी सामाजिक चेतना और तिखेपन के कारण एक नई हलचल उत्पन्न कर दी थी । प्रसादजी, गुलेरीजी और प्रेमचन्दजी का अभ्युदय हिन्दी–कहानी, कलाकी अनन्त साधना के फलस्वरूप था । संक्षेप में प्रेमचंदजी और प्रसादजी इन दो महान कथा शिल्पियों द्वारा पृथक्क और अनन्य कला, संस्थान के निर्माण हुए, जिनके अंतर्गत हिन्दी के अनेकमेक विकास युगीन कहानीकारों ने अपनी कलाकृतियाँ दी ।

### ३.१.२.२ : परवर्ती युग

प्रसाद प्रेमचंदोतर युग में हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात होता है । श्री गणपतिचन्द गुप्त लिखते है, ''सन् १९३० के लगभग हिन्दी कहानी–साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवादीया के स्थान पर यथार्थवादिता, सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिकता तथा राजनीति और धर्म के स्थान पर मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण की प्रतिष्ठा होने लगी । यद्यपि कहानी की पुरानी परंपराओं का एकाएक लोप नहीं हो गया, पर उनके साथ ही अनेक परंपराओं का उद्‌श्य एवं विकास हुआ ।''[८] इस परवर्ती काल में कहानी–साहित्य में विषय वैविध्य देखने को मिलता है । विभिन्न परंपरा एवं विभिन्न विचारों को लेकर कहानियाँ लिखी गई । मुख्यरूप से निम्नांकित प्रवृत्तियों पर कहानियाँ लिखी गई।

१) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

२) यथार्थवादी सामाजिक कहानियाँ

३) प्रगतिवादी कहानियाँ

४) ऐतिहासिक, सांस्कृतिक कहानियाँ

५) साहसिक परंपरा से संबंद्धित कहानियाँ

इस युग में इन विषय वैविध्य को लेकर कई कहानीकारों ने अपनी लेखनी से उत्तम कहानियाँ हिन्दी साहित्य को प्रदान की ।

सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक कहानीधारा के अंतर्गत अतीव महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय कहानीकार है, जैनेन्द्र, ('वातायन', 'पाजेब'), भगवतीप्रसाद वाजपेयी ('हिलरि', 'पुष्करिणी'), भगवतीचरण शर्मा ('खिलते फूल', 'दो बाँके'), अज्ञेय ('परंपरा', विपथगा') इलाचन्द्र जोशी ('रोमांटिक छाया', 'आहुति') इत्यादि है । इस परंपरा की कहानियों में मानव–मन की विभिन्न प्रवृत्तियों, गुप्तियों एवं कुण्ठाओं का विश्लेषण आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के आधार पर हुआ है, जिनमें समष्टिवादी दृष्टि के स्थान पर व्यक्तिवादी दृष्टि को प्रमुखता प्राप्त हुई है ।

यथार्थवादी सामाजिक कहानी लिखनेवाले कहानीकारों ने आधुनिक समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का उद्‌घाटन यथार्थपरक दृष्टिकोण से किया है । इनमें मुख्यरूप से

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ('चन्द्रकला', 'भय का राज्य'), उपेन्द्रनाथ अश्क ('निशानियाँ', 'दो धारा') रामप्रसाद पहाडी ('सफर', 'अधूरा चित्र'), डॉ. सत्यप्रकाश अंगर ('नयामार्ग', 'अवगुण्कन''), 'देवीदयाल चतुर्वेदी ('अन्तर्ज्वाला') राजेश्वर प्रसादसिंह, ('कलंक') इत्यादी सभी कहानीकार सिरमौर है । इन कहानीकारों के विषय में श्री जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल लिखते है, ''यथार्थ इनका साधन रहा है और सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए आक्रोश एवं करूणा जाग्रत करना साध्य । इन्होंने समाज की बहुत सी समस्याओं को कथानकबद्ध किया है । इन्होंने परिवर्तित परिस्थितियों में प्राचिन रूढियों का खंड्न नहीं किया, वरन स्त्री–पुरूष, वासना जातिगत, धर्मगत एवं रूढियां एवं धारणाओं को नई कसौटी पर कसकर देखा है । और उसके लिए कहीं तीव्र व्यंग्य किया है तो कहीं करूणा की धारा प्रवाहित की है । (९)

प्रगतिवादी कहानीधारा में मुख्यत: यशपाल ('पिजरे की उडान', 'वो दुनिया'), डॉ. संगेय राघव ('देवदासी', 'अँगारे न बुझे'), अमृतराय, मम्मयनाथ गुप्त, ख्वाजा अहमद अब्बास, कृष्णचंद, श्री कृष्णदास आदि कहानीकारों को स्थान दिया जा सकता है । प्रगतिवादी कहानी परंपरा के विषय में श्री राजनाथ शर्मा लिखते है, ''प्रगतिवादी कहानियों की यह परंपरा प्रेमचंद के उपरांत आरंभ हुई थी और आज तक निरंतर सशक्त रूप में चली आ रही है । इस नवीन परंपरा ने हिन्दी कहानी को पुराने आदर्शवादी और यथार्थवादी मोहजाल से मुक्त कर उसे एक नई दिसा प्रदान करते हुए समाज के यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए प्रेरित किया था । नए कहानीकारो को एक वैज्ञानिक, स्वस्थ सामाजिक और आर्थिक दृष्टि प्रदान की थी जिससे कहानी का रूप स्वस्थ, अधिक सशक्त और प्रभावशाली बन गया था ।''(१०) इस परंपरा के सभी कहानीकारो ने पूँजीवादी सभ्यता के दोषो, शोषक एवं शोषित वर्ग के जीवन की परिस्थितियों से संबंधित विभिन्न पक्षो का उद्घाटन अपनी कहानियों में किया है ।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा के अंतर्गत उल्लेखनीय कहानीकार है – वृंदावनलाल वर्मा ('कलाकार का दण्ड'), राहुल सांकृत्यायन ('वोल्गा से गंगा तक'), भगवतशरण उपाध्याय इत्यादि। इन सभी कहानीकारों ने अपनी विभिन्न कहानियों में अतीत की घटनाओं, परिस्थितियों

एवं वातावरण का चित्रण सजीव रूप में किया है। ऐसी कहानियाँ लिखने की परंपरा को ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा कहा गया ।

हास्य व्यंग्य को लेकर कहानी लिखने वाले लेखको में चर्चा योग्य कहानीकार है, जी.पी.श्रीवास्तव, हरिशंकर परसाई, अजीम वेग चुगताई, अन्न पूर्णानन्द, कान्तानाथ पांडेय, 'चोंच', 'राधाकृष्ण', श्री निवास जोशी, रघुकुल तिलक, काशीनाथ उपाध्याय आदि अनेको कहानीकारों ने समाज के विभिन्न पक्षों पर रोचक व्यंग्यात्मक कहानियां लिखी है । इन कहानीकारों ने हास्य और व्यंग्य का आलंबन बनाते हुए आधुनिक जीवन की आलोचना भी प्रस्तुत की है ।

ऐसे ही कुछ लेखकों ने युध्ध, क्रान्ति, शिकार संबंधी साहसिक विषयों को लेकर भी कहानियों की रचना की है । कि परंपरा के कहानीकारों में श्रीराम शर्मा, प्रभाकर माचवे, मोहनसिंह रोगर, श्रीनाथसिंह, गणेश पांडेय, राजबहादुरसिंह, रघुवीरसिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी इत्यादि प्रमुख है । प्रेमचदोतर कहानी साहित्य में जो विविधता एवं आधुनिकता दिखाई देती है, जो विषय वैविध्य मिलता है, उसके विकास के संदर्भ में पत्र–पत्रिकाओं के महत्व को श्री शिवकुमार शर्मा इस प्रकारण वर्णित करते है – ''हिन्दी कहानी के इस अल्पकालीन विपुल प्रसार, विकास और आशातीत अभिवृद्धि में पत्र–पत्रिकाओं ने भी कोई कम योग नहीं दिया । मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों में कहानियाँ धडाधड छपी । कुछ पत्रिकायें तो केवल कहानियों की है। इन पत्रिकाओं ने हिन्दी के अनेक कहानीकारों को प्रेरणा दी तथा हिन्दी कहानी ने असंख्य पाठक पैदा किये । हिन्दी कहानी के विकास में सरस्वती, चाँद, इन्दु, माया, कहानी और सरित, मनोरमा आदि पत्रिकाओ ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है ।''(११)

### ३.१.२.३ : स्वतंत्र्योत्तर युग बनाम विभिन्न आंदोलन

स्वातंत्र्योत्तर युग में कहानी ने अपना रूप बदला । पहले उपन्यास की भाँति कहानी में भी छः तत्त्वो के निर्वाह का नियम था । अपितु आधुनिक काल में कथ्य और शिल्प की नवीनता के कारण हिन्दी साहित्य में नई कहानी ने जन्म लिया । इस तरह स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य में

युग–चेतना प्रस्फुटित हुई । स्वतंत्रता से पूर्व की हिन्दी कहानी की परंपरा में इस युग में मोड आया । यह क्रांतिकारी परिवर्तन इतना प्रभावशाली हुआ कि इसकी तुलना में पूर्ववर्ती कहानी प्राचीन सी हो गई और यह कहानी उससे वैभिन्य रखने के कारण उसकी अपेक्षा में नई कहानी कहलाई । स्वातंत्र्योत्तर युग में आये कहानी के बदलाव पर दृष्टिपात किया जाए ।

### ३.१.२.३.१ : नई कहानी

सन् १९५० के अनंतर हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक नये आंदोलन का प्रवर्तन हुआ जिसे 'नई कहानी' आंदोलन की संज्ञा दी गयी । नई कहानी में नवीनता का बोध था । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देशविभाजन से हुए सांप्रदायिक फसाद, शरणार्थियो की समस्या, सामंतवादी, अलगाव का दुटिल षड्यंत्र, प्रजातंत्रीय व्यवस्था और सामन्तवादी जीवनमूल्यो की टकराहट आदि समस्याओं से घूमिल मानसिकता में इस नई कहानी का उद्‌भव हुआ । इस आंदोलन के उन्नायको में श्री राजेन्द्र यादव, निर्मलवर्माल कमलेश्वर, मोहन राकेश इत्यादि ने घोषित किया कि नई कहानी का लक्ष्य नये भाव बोध या आधुनिकता बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ अनुभव का चित्रण करना है । नई कहानी के संदर्भ में श्री राजेन्द्र यादव यथार्थ जिखते है – ''नई कहानी परिवेश के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से परिवेश को पाने की एक प्रक्रिया है और हर कथाकार ने इस प्रक्रिया को अपने ढंग से ग्रहण किया है इसलिए उसकी विविधता और अलपने ने बहुत लोगो को संकट में डाल दिया है और वे उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं कर पाते । परिभाखाओं से साहित्य को समझनेवालों के लिए यह सचमुच ही एक दु:खद और विकट स्थिति है, जिसका सामना उन्होंने शायद कभी नहीं किया । हर कहानीकार का कथन और उसके निर्वाह का ढंग तो अलग है ही, परिवेश भी इतना विस्तृत है कि बहुतों की निगाह धुँधला जाती है। इसमें जहाँ फणीखरनाथ रेणु की आँचलिकता और मार्कण्डेय, शिव प्रसादसिंह, अवध नारायण सिंह के ग्राम है, वही दूसरी ओर उषा प्रियंवदा, निर्मल वर्माल विजय चौहाण की अंतराष्ट्रीयता भी एक ओर नगर संकुल सभ्यता कमलेश्वर, मोहन राकेश, कृष्ण बलदेव वैदल भीष्म साहनी, अमरकान्त, रमेश बक्षी, दुधनाथसिंह, गानरंजन, गिरिराज किशोर, मन्नू भंडारी, हरिशंकर

परसाई, शरद जोशी में आयी है, तो दूसरी ओर बस्तर के आदिवासियों और कुमार इत्यादि के पहाडी जीवन को शानी राजेन्द्र अवस्थी, शैलेश महियानील शिवानी, पानू खोलिया ने चित्रित किया है । वस्तुत: नई कहानी आज के जीवन जिसे आधुनिकता, समकालीनता कुछ भी कह लीजिए उसे विभिन्न स्तरों पर समझने, उसके अर्थ तलाश करने, सार्थकता निरर्थकता खोजने की कहानी है । इस प्रक्रिया में कहानी के स्वरूप, शिल्प, भाषा और स्वयं जीवन, उसके आपसी संबंधो के इतने अधिक रूप और उनकी छायाओं को वाणी मिली है कि लगता है आज शायद साहित्य की कोई दूसरी विद्या इतनी सम्पन्न नहीं है।''[१२] नयी कहानी में व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, अनुभूतिवाद एवं जीवन, समाज और राष्ट्र के व्यापक फलक से कटकर कहानीकरों के वैयक्तिक जीवन की निजि सीमाओं से आबद्ध हो गयी । इसीलिए नई कहानी में व्यक्तिनिष्ठ अहं, काम चेतना, यौनाचार, नारी, पुरू संबंधो का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है । वस्तुत: नयी कहानी में कथावस्तु एवं घटना का स्थान संवेदना और अनुभूति ने ले लिया ।

### ३.१.२.३.२ :सचेतन कहानी

नयी कहानी आंदोलन का प्रवर्तन हुआ । इसके प्रवतरक डॉ. महीपतसिंह है । जिन्होने अपनी पत्रिका 'संचेतना' के माध्यम से इस आंदोलन को आगे बढाया । सचेतन कहानी के विषय में श्री गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते है, ''सचेतन कहानी'' में केवल संवेदनाओं का ही चित्रण नहीं, अपितु उससे संबंधित पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं का भी चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इसलिए सामाजिक दृष्टि से भी सचेतन कहानी नयी कहानी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ एवं संतुलित एवं व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक कही जा सकती है ।''[१३] 'सचेतन कहानी' लिखनेवाले प्रमुख कहानीकारों में महीपतसिंह, मनहरचौहान, राजकुमार भ्रमर, सुखबीर, बलराज पण्डित, कुलभूषण, वेदराही, मेहरून्निसा परवेज आदि के नाम उल्लेखनीय है। वास्तव में सचेतन कहानी में सचेतना या विचारों की जागरूकता को विशेष महत्त्व दिया गया।

### ३.१.२.३.२ : सहज कहानी

'सहज कहानी' के प्रवर्तक अमृतराय थे । उन्होंने घोषित किया कि कहानी का लक्ष्य अपने कहानीपन को खोकर जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करते हुए उससे जीवन के कटु सत्यों और व्यवस्था की भ्रष्टता को उजागर करना है । वस्तुत: अमृतराय ने कहानी के क्षेत्र में व्यापक जीवन दृष्टि एवं सामाजिकता से अनुप्राणित दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा का प्रयास किया था, किन्तु संगठन और प्रचार के अभाव में वह सफल नहीं हो सका ।

### ३.१.२.३.३ : समकालीन कहानी

'समकालीन कहानी' के प्रवर्तक गंगा प्रसाद विमल थे । उन्होंने 'समकालीन कहानी' में समकालीनता या आधुनिक बोध पर विशेषबल दिया, किन्तु यह आंदोलन विशेष आगे नहीं बढ पाया ।

### ३.१.२.३.४ :सक्रिय कहानी

'सक्रिय कहानी' के आंदोलन को चलानेवाले कहानीकार राकेश वत्स थे । उन्होंने 'सक्रिय कहानी' के अंतर्गत व्यक्ति की चेतनात्मक उर्जा एवं जीवन्तता पर अधिक जोर दिया, पर यह आंदोलन भी अधिक नहीं चल पाया ।

### ३.१.२.३.५ :अकहानी

सातवे देशक के आंदोलन 'अकहानी' काफी चर्चास्पद रहा । जिस प्रकार कविता में क्रमश: नई कविता के पश्चात 'अकविता' का आगमन हुआ, लगभग उसी प्रकार कहानी में नई कहानी के बाद 'अकहानी' का प्रादुर्भाव हुआ। दोनो की मूल प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ भी लगभग एक जैसी थी। नयी कहानी का व्यक्तिनिष्ठ यथार्थवाद अकहानी में आकर घोर व्यक्तिवाद और अतियथार्थवाद में परिवर्तित हो गया । इस धारा के प्रमुख कहानीकार है, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, दूधनाथसिंह, गंगा प्रसाद विमल इत्यादि । अकहानी के कहानीकारो के विषय में श्री

गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते है – ''इन्होंने कहानी को जीवन के समस्त मूल्यों, समाज के सभी उत्तरदायित्वों और नैतिकता के सभी प्रतिबंधो से मुक्त घोषित करते हुए उसमें निजी काम–संबंधो एवं यौन प्रवृत्तियों के उन्मुक्त चित्रण का समर्थन किया। इन्होंने न केवल नारी और पुरूष के उच्छंखल संबंधो का चित्रण किया, अपितु समलैंगिक यौनाचार एवं विभिन्न पशुओं के साथ मनुष्य के अप्राकृतिक कामाचार का भी चि नि:संकोच किया है । वस्तुत: कामवासना के जितने भी विकृत और भ्रष्ट रूप हो सकते है, उनस सभी का प्रदर्शन इनके साहित्य में स्पष्ट रूप में हुआ है।''(१४)

### ३.१.२.३.७ :समान्तर कहानी

सातवे दशक में 'अकहानी' के समक्ष प्रतिक्रिया स्वरूप 'समान्तर कहानी' का आंदोलन हुआ, जिसके प्रवर्तक कमलेश्वर थे । कमलेश्वर ने 'अकहानी' की उच्छंखल भोगवादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए 'समान्तर कहानी' आंदोलन का प्रवर्तन किया । समान्तर कहानी में मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज की विभिन्न स्थितियों, विषमताओं एवं समस्याओं का अंकन सूक्ष्मतापूर्वक हुआ है । विशेषत: भूमिहीन किसानो, कल– कारखानो में काम करनेवाले मजदूरों, बेरोजगार युवको तथा निम्न मध्यवर्गीय पविारो की जीवन की छोटी–छोटी आवश्यकताओं का भी चित्रण इस वर्ग की कहानियों में हुआ है । पुरूष और नारी के संबंधो का चित्रण भी इनमें स्वस्थ और नारी के सनबंधो का चित्रण भी इनमें स्स्थ और संतुलित रूप में किया गया है । इस आंदोलन के मनुष्य कहानीकारों में कमलेश्वर, कामतानाथ, रमेश उपाध्याय, मधुकरसिंह, नरेन्द्रकोहनी, हिमांशु जोशी, सतीश जमाली, धर्मेन्द्रगुप्त इत्यादि प्रमुख है ।

हिन्दी कहानी के सातवें आठवें दशक में बहुत से परिवर्तन, विकास एवं नये जीवन मूल्य प्रकट हुए । इस विषय में डॉ. रमेश देशमुख लिखते है ''स्वातंत्र्योत्तर कहानी में बदलते हुए जीवन मूल्यों का क्रमश: विकास होता गया है । सातवे दशक में विशेष रूप से हिन्दी कहानीकारों ने जीवन और स्थितियों के खंङन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है । किन्तु आठवाँ दशक इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है । इस दशक की कहानी में जीवन मूल्यों के विघटन का चित्रण और अधिक

स्पष्ट हो गया है । आठवे दशक की कहानियाँ हिन्दी कहानी के उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करती है ।''[१५]

इस प्रकार हम देखते है कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी विभिन्न आंदोलनो के प्रभाव से निरंतर विकासोन्मुख होती गई । यद्यपि इससे संबंध सभी आंदोलन स्वस्थ दृष्टिकोण एवं व्यापक दृष्टि से परिचायक नहीं कहे जा सकते किन्तु फिर भी इसमें कोइ संदेह नहीं है कि उनके प्रभाव से कहानी की गतिशीलता में अभिवृद्धि हुई । स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के उतार चढाव के विषय में श्री केशव कुमार बाजपेयी लिखते है, ''स्वतंत्रता के पश्चात कथासाहित्य के क्षेत्र में बदलाव आया । कहानी की मूल संवेदना तो आदमी के साथ जुडी लेकिन ग्रामो के साथ ही कस्बाई जीवन को भी नये कहानीकारों ने महत्त्व दिया । इसके साथ ही आँचलिक कहानी के माध्यम से जन जीवन के विराट क्षेत्र से चुनी कहानियों में अंचल विशेष की माटी की महक भी कहानियों में मिली सातवें दशक के बाद राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक संस्थाओं में और स्वंतत्रता के बाद भारतीय जनता में जो आशावाद दिखलायी पडा था, यह नये सतालोलुपों की मृद्धता के कारण समाप्त होने लगा । इस मोहभंग का यथार्थ चित्रण आठवे दशक के हिन्दी कहानीकारों ने किया । इसलिए इस दशक की कहानी का साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है।''[१६] इस तरह हिन्दी कहानी अतियथार्थवाद, भोगवाद एवं उच्छुंखलतावाद के चक्रव्यूह से निकलकर, व्यापक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की और उन्मुख हुई । इसीलिए हम आज की कहानी में भारतीय गाँव शहर और नगर के जीवन से संबंधित विभिन्न वर्गो का चित्रण सहज स्वाभाविक रूप में देखते है । इसमें पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी पक्षों का चित्रण न्यूनाधिक रूप में हुआ है । संक्षेप में हमारे कहानीकार केवल पश्चिम से आयातित विचारों, वादों एवं आंदोलनो से ही प्रेरणा एवं प्रभाव न ग्रहण करके भारतीय संस्कृति के व्यापक तत्त्वो एवं विवेकानन्द अरविन्द, रवीन्द्र एवं गाँधी के उदात्तदशरन को भी हृदयगम करते हुए लेखन के क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र चेतना, व्यापक दृष्टि एवं सहज अनुभूतियों का परिचय दे, जिससे कि हिन्दी कहानी विश्व कथा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना सके ।

### ३.१.३ : हिन्दी कहानी साहित्य और भीष्म साहनी

हिन्दी कहानी साहित्य में आधुनिक युग की समस्याओं को दृष्टि समक्ष रखते हुए कथ्य और शिल्प की नवीनता के साथ नई कहानी, साठोतरी कहानी, समकालीन कहानी, व्यंग्यात्मक कहानी इत्यादि कई प्रकार की कहानियाँ लिखी गई और आज भी लिखी जाती है । नई कहानी के युग में भीष्म साहनी अपने समाज के प्रति सजग रचनाकार के रूप मे सामने आये थे । उन्होंने अपने लेखकीय दायित्व को निभाते हुए समाज के बीच होनेवाले मूल्य विघटन और मूल्य परिवर्तन को सही रूप में पकड्ने की कोशीश की थी । साहनीजी के साहित्य का केन्द्र बिंदु मध्यवर्ग था, मध्यवगर का ही पक्ष लेकर साहनीजीने सामंतवाद और पूँजीवाद की शोषणमूलक प्रवृत्तिओं की कलई खोलकर रख दी थी । उन्होंने अपने साहित्य में यथार्थ का ऐसा रचनात्मक चित्रण किया था कि जिसे पढकर पाठक तिलमिला जाता था, और पूँजीवाद को बल देनेवाली प्रवृत्तियों के प्रति आक्रोश से भर उठता था । उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट होता था कि मध्यवर्ग और निम्नवर्ग पूँजीवाद और सामन्तवाद के शोषण का किस सीमा तक शिकार हुए थे । साहनीजी की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि वहाँ तक पहुँची थी जहाँ सामाजिक दूषणो की जडे फैली थी । समाज में व्याप्त किसी भी उनाचार को वे अपने व्यग्य बाणो का निशाना बनाने से नहीं चुकते थे । साहनीजी की प्रत्येक कहानी में आशावादी दृष्टि परिलक्षित होती थी परिणाम स्वरूप पाठक के हताश जीवन में आशा कि एक नूतन किरण संचरित हो उठती थी । वस्तुत: उनका साहित्य क्रांतिकारी भावनाओं को बल देनेवाला अवश्य था किन्तु उनकी क्रांति ध्वंसात्मक प्रवृत्तिओं का पक्ष नहीं लेती थी । साहनीजी ने सत्य को यथार्थवादी दृष्टि से अभिव्यक्त करते हुए मानवता और नये मानवतावादी मूल्यो की खोज भी की थी । उनके कहानी साहित्य में तत्कालीन समाज के प्रतिबिम्ब नजर आते है । ऐसे वैशिष्टय से भरी साहनीजी की अर्थगांभीर्य पूर्ण कहानियों का हम वर्गीकृत अध्ययन करके मूल्यांकन करेंगे ।

### ३.१.४ : साहनीजी की कहानियों का वर्गीकृत अध्ययन

भीष्म साहनी स्वयं लिखते है कि लेखक जिन्दगी को देखने का एक नजरिया देता है, उन्हीं के शब्दो में देखे तो; ''जब लेखक की अपनी सहानुभूति और सद्भावना पाठक के दिल की गहराईयों तक जा पहुँचे और पाठक भी उसी सद्भावनापूर्ण नजर से दुनिया को देखने पहचानने लगे जिस नजर से लेखक ने देखा और पहचाना था, तब ऐसा लगने लगता है जैसे जिन्दगी को देखने का एक नजरिया दिया है, लेखक उसका हाथ पकड्कर अपने साथ ले चला है, और उसे अपने परिवेश को जानने समझने की नजर दी है । जब लेखक और पाठक के दिल के तार इस तरह से जुड जाते है तो कला के बहुत सारे रूपवादी गुण पीछे छूट जाते हैं । तब इस बात का बहुत महत्त्व नहीं रह जाता कि लेखक ने अपनी कहानी किस्सागोई के अंदाज में कही है या अपनी ओर से टिप्पणी किये बिना कहानी का विकास हुआ है, कि अमुक कहानी पर आर्यसमाजी प्रभाव था या गाँधीवाद का या माकर्सवाद का, कि कहानी अन्त में नसीहत करती है या नहीं करती, कि कहानी आदर्शवादी है या यथार्थवादी इतना काफी है कि कहानी में जिन्दगी बोल रही है और पाठक के दिल को उद्वेलित कर रही है । ''(१७) साहनीजी के इन विचारो को पढने के बाद हम समझ गये है कि साहनीजी कहानियों के केन्द्र में कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति है । उनके साहित्य की नींव मध्यवर्ग है । उनका पक्ष लेकर है साहनीजी ने सामन्तवाद और पूँजीवाद की शोषणमूलक प्रवृत्तियों का रचनात्मक चित्रण किया है, जिसे पढकर पाठक तिलमिला उठता है और पूँजीवाद की ओर घृणा जाग्रत करता है । उनकी कहानियों में अहंभावना, भय, अतद्वन्र्द, हीनभाव, उपेक्षाभाव, स्वार्भवृत्ति, स्वप्न, भ्रम, लापरवाही की वृत्ति, वहशीलापन, भय, लाचारी, अस्तित्व के प्रति चेतना, विवशता, दुर्बलभाव, लालसा, पागलपन, दृढ निश्चियीभाव, कामोवृत्ति और अहंकार दिखते है । साहनीजीने मनुष्यगत स्वभाव के सभी पहलूओं को कहानी में स्थान दिया है । साथ है वर्गीकृत की दृष्टि से अध्ययन का जाँच की जाये तो उनकी कहानियों को निम्नलिखित क्षेत्र में विभाजित किया है ।

१) राजनैतिक कहानियाँ

२) सामाजिक कहानियाँ

३) धामिरक कहानियाँ

४) आर्थिक कहानियाँ

५) बोधपरक कहानियाँ

### ३.१.४.१ : राजनैतिक कहानियाँ

राजनैतिक संबंधी विचार में साहनीजी का मंतव्य यही था कि, राजनीति जीवन से अलग नहीं है, बल्कि हमारे सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन को गहरा प्रभावित करती है, साहित्यकार उसकी अपेक्षा कैसे कर सकता है?'' आगे साहनीजी कहते है कि, ''राजनीतिक सूझ से साहित्यकार की दृष्टि में प्रौढता आती है ।''[१८] साहनीजी ने राजनैतिक विषयवस्तु पर बहुत सी कहानियाँ लिखी है । साठोतरी कहानी की अंतर्वस्तु के विस्तार की दृष्टि से अपने समकालीन कहानीकारों के बीच साहनीजी की स्थिति ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । इस दौर के बहुत से कहानीकारों की तरह न तो कहीं वे स्त्री–पुरूष संबंधो के अंकन में उलझते है और न ही शिल्प की बारीकियों को लेकर परेशान मालूम होते है । इससे भिन्न उनकी कहानियाँ पतनशील बुर्जुआ समाज में मूल्यगत संक्रमण, विपर्यय और रखलन की स्थिति में एक नैतिक हस्तक्षेप की हैसियत रखी दिखाई देती है । राजनीतिक भ्रष्टाचार और विसंगतियो की जितनी स्पष्ट और प्रामाणिक पहचान साहनीजी की कहानियों में मिलती है, उतनी उस दौर के कदाचित किसी दूसरे कहानीकार में नहीं मिलती । इसी कारण साहनीजी की कहानियों के आधार पर आजादी के बाद के भारत की एक मुकम्मिल तस्वीर आसानी से तैयार की जा सकती है, जिसमें राजनीति, शासनतंत्र, शिक्षा पद्धति, नौकरशाही और साहित्य एवं कला की विकृतियों के साथ शायद ही ऐसा कोई पक्ष होगा जो छूटा हो ।

साहनीजी की राजनीति से संबंधित कहानियों में 'गलेमुच्छे', 'नया मकान', 'मौका परस्त', 'अमृतसर आ गया है' आदि है । 'गलमुच्छे' कहानी का कार्यकर्ता सैद्धांतिक रूप से पार्टी के साथ है पर अपने व्यवसाय में असफल होने के कारण वह पार्टी से बहुत दूर चला जाता है । 'नया मकान' कहानी के गिरिजा एक क्रांतिकारी है पर आज उनका क्रांतिकारी अतीत किस्से

कहानी की वस्तु बनकर रह गया है । अब उन्हें क्रांति की याद तब ही आती है जब वे शराब पीते है । राजनीतिक परिस्थिति का क्रुर मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करनेवाली कहानी मैाकापरस्त है । जिसमें राजनीति की उस कुट नीति को सामने लाया गया है कि मनुष्य के शब का भी स्वार्थ के लिए उपयोग किया जाए । साहनीजी की कहानियाँ राजनीतिक स्थितियों को व्यक्त करती है । इसप्रकार साहनीजी की कहानियोँ में राजनीति को ध्यान में रखते हुए विषय–वस्तु का गूँफन किया गया है । इन कहानियों में समकालीन राजनीति की यथार्थ परिस्थिति एवं परिवेश का वर्णन देखा जा सकता है । साहनीजी की कहानियाँ राजनीति के वास्तविक चित्रण से परिपूर्ण एवं अनूठी है । साहनीजी राजनीति के ध्येय की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते है, ''राजनीति को उसके दलगत संकीर्ण अर्थो में लें, जैसे किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता, धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना, मानव–समानता के ध्येय से उत्प्रेरित राजनीति, तो यहां भी अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य की संभावनाए खुलेंगी ही, कम नही होगी । इस ध्येय से प्रेरणा लेकर आज भी उत्कृष्ट साहित्य रचा जा रहा है ।''[१९]

### ३.१.४.२ : सामाजिक कहानियाँ

साहनीजी की कहानियाँ उनके जीवनानुभव को दर्शाती है । अत: स्वाभाविक है कि कहानियों में सामाजिक जीवन की तस्वीरे उभरे । साहनीजी की कहानियों में सामाजिक विघटन और विसंगतियों के चित्र बहुआयात से उभरे है । लेकिन उनके इन चित्रों के माध्यम से हमें संकेत मिलता है कि इन विसंगतियों को दूर किया जा सकता है । उनकी कहानियों में समाज का नकारात्मक और ऋणात्मक पहलू ही उभरता हैं । साहनीजी ने काफी कुछ अपने घरो और व्याप्त माहौल से ग्रहण किया है । उस संदर्भ में वे खुद लिखते है कि, ''मैने जिस माहौल में आँख खोली वह ठहरा हुआ दौर नहीं था । उसमें हलचल थी, नये नये विचार समाज को आंदोलित कर रहे थे, मेरे पिताजी आर्यसमाजी विचारोन के थे । घर के अन्दर सदा समाज–सुधार की चर्चा चलती रहती, उसका प्रभाव मुझ पर और लेखन पर पडा ।''[२०] यहाँ उनकी कुछ सामाजिक कहानियों को देखा जाय जिनके केन्द्र में नारी, नगर, कस्बे, महानगर का चित्रण है । युगीन सामाजिक

परिस्थितियों के कारण इस युग की कहानी में उपेक्षित पात्रो का भी चित्रण किया गया है । भीष्म साहनी की कहानी 'निशाचर' इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें रात के समय रद्दी बटोरने वाली नारी का चित्रण हुआ है । उनकी कहानियों में 'राधा–अनुराधा' 'त्रास' 'चीफ की दावत' 'खून का रिश्ता' 'सागमीट', 'खुश्बू', 'झूमर', 'शिष्टाचार' आदि ऐसी कहानियाँ है जिनमें सामाजिक विसंगतियों की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति है । सागमीट एक अफसर के परिवार की कहानी है परिवार में जग्गा नामका नौकर है, जिसकी पत्नी अफसर के छोटे भाई की अशिष्टता का शिकार बनती है । जग्गा आत्महत्या कर लेता है । जिसमें पारिवारिक जीवन की विसंगतियाँ है । 'त्रास' कहानी उच्चवर्ग के तथाकथित सम्पन्न व्यक्तियों की हृदयहीनता पर गहरा व्यंग्य है । 'राधा–अनुराधा' दमन और शोषण में जीनेवाले संघर्षशील लोगों के जीवन की कहानियां है । 'चीफ की दावत' में वृद्ध माँ के बेटे का स्वार्थी व्यवहार चित्रित है। शिष्टाचार कहानी निम्न वर्ग के नौकर से संबनधित है । 'झूमर' कहानी अर्जुनदास नाम के मध्यवर्गीय व्यक्ति की है । जो पहले तो रंगमंच से जुडा रहा किन्तु बाद में स्वतंत्रता संग्राममें जुड गया ।

साहनीजी की सामाजिक अन्य कहानियों में 'अशान्त रूहें', 'क्रिकेट मेच', 'मुर्गी की किमत', 'मीली आँखे', 'अबु', 'गंगो का जाया', 'भाग्य रेखा', 'घर–बेघर', 'खुने के छींटे', 'घर की इज्जत', 'माता–विमाता', 'बीवर', 'बात की बात', 'सिफारिशी चिट्ठी', 'नई हवेली', 'सिर का सदका', 'कुछ और साल', 'इमाला', 'पास–फेल', 'प्रोफेसर', 'कटघरे', 'अपने–अपने बच्चे', 'सुनहरी किरण', 'साये', 'एक रोमेण्टिक कहानी', 'गीता सहस्सर नाम', 'पटरियाँ', 'ललक', 'जखम', 'रास्ता', 'इन्द्रजाल', 'डोरे', 'पैरों का निशान', 'तसवीर', 'ढोलक', 'भगोडा', 'वाईचू', 'भाई बन्द', 'प्रणय–लीला', 'पहचान', 'बाप–बेटा', 'पाप–पुण्य', 'ललिता', 'अकाल मृत्यु', 'धिपे चित्र', 'फूँला', 'रानी मेहतो', 'मेड इन इटली', 'धरोहर', 'लीला नन्दलाल की', 'खिलौने', 'भटकाव', 'अनूठे साक्षात्', 'सड्क पर', 'फैसला', 'चाचा मंगलसेन', 'कण्ठहार', 'सलमाआया', 'निशाचर', 'संभल के बाबू', 'विकल्प', 'पोखर', 'प्रादुर्भाव', 'मरने से पहले', 'सेमिनार', 'देवेन', और 'चोरी' आदि है । इन कहानियों में साहनीजी के विषय जात–पांत, महंगाई, बेरोजगारी, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता,

संस्कृति, सहनशीलता है । इन सामाजिक कहानियों में मनुष्य को उसके पूरे सामाजिक परिवेश के केन्द्र में देखा है और उसे उसके संपूर्ण व्यक्तित्त्व के साथ उभारने की चेष्टा की है । इस प्रकार साहनीजी की लगभग सभी कहानियाँ ऐसी है, जिसकी सामाजिक पक्ष से कहीं न कहीं कोई तार्तम्य जुडा हुआ है । इन कहानियों की विषयवस्तु में सामाजिक दृष्टिकोण दिखाई देता है । भारतीय समाज में शनै: शनै: परिवर्तन को साहनीजी की कहानियों में देखा जा सकता है । भारतीय समाज में धीरे धीरे शाश्वत मूलयों का अवमूल्यन होता गया, उसका सूक्ष्य चित्रण साहनीजी की कहानियों मे परिलिक्षित होता है । इन कहानियों की विस्तृत चर्चा हम अलगे अध्याय में करेंगे।

### ३.१.४.३ : धार्मिक कहानियाँ

साहनीजी का कहानी साहित्य वैविध्य पूर्ण है । उन्होंने अपनी कहानियों में राजनीति और समाज के साथ धर्म को भी उतना ही महत्त्व दिया है । उनकी कहानियों में बहुत सी कहानियाँ है, जिसमें धर्म संबनधी बातों पर लिखा है और व्यंग्य के द्वारा धर्म की दुरूपता पर भी प्रहार किया है। भारत की अशिक्षित जनता ही केवल अंधविश्वासी नहीं है, बल्कि अंधविश्वास की जडे भारतीय जन मानस के हृदय में गहराई तक गयी है, इसलिए धर्म के नाम पर जनता को मूर्ख बनाना बेहद आसान है । साहनीजी ने धार्मिक पाखंड का हर स्तर पर विरोध किया है । उनकी कहानियों में 'अमृतसर आ गया है' तथा 'जबूरबखश' विख्यात है । इसी प्रकार 'सरदारनी' नामक कहानी में भी एक निर्भय और साहसी नारी का चित्रण किया गया है जो अपने खुद के प्राणों को संकट में डालकर मास्टर करीमदीन को धार्मिक और सांप्रदायिक दंगो से बचाती है । वैसे ही 'अमृतसर आ गया' भारत विभाजन के समय की कहानी है जिसमें हिन्दु–मुसलमानों के बीच में सांप्रदायिक दंगे हुए थे । 'बहूरबखश' एक सच्ची कहानी है, जिसे लेखकने सुभद्रा जोशी के मुँह से सुनी है । जहूरबखश ने हिन्दु–मुसलमान का फर्क न करते हुए आम आदमी को अपनी कहानियों में उभारा, हिन्दी में लिखा, किन्तु सांप्रदायिक दंगो में वह निशाना बनने से नहीं चूका । 'सरदारनी' विभाजन के समय के दंगो की कहानी है । 'झुटपुटा' कहानी का संबंध सन् २४ के दिल्ली में हुए हिन्दू–

सिकख दंगे से है । 'मालिक का बंदा' धार्मिक पाखण्ड को उजागर करनेवाली कहानी है । 'पाप पूण्य' कहानी आर्य समाज की मानसिकता के उस रूढिवाद को उद्घाटित करती है जिसके तहत जन्म से ही बच्चे के स्वाभाविक विकास को अवरूद्ध कर उन्हें एक जड किस्म की नैतिकता में बांधने की कोशिश की जाती है । 'एष धर्म: सनातन:' कहानी एक मंदिर के पुजारी की मन:स्थिति को व्यक्त करती है । प्रस्तुत कहानी में धर्मप्रिय रूढिग्रस्त ब्राह्मण पुजारी की मनोदशा को चित्रित किया गया है । 'समाधि भाई रामसिंह' धार्मिक अन्धश्रद्धा और उन्माद साधारण जन की अमानवीयता की कहानी है । 'पहला पाठ' कहानी का ब्रह्मचारी देवदत अपने गुरू वानप्रस्थजी से पहला पाठ ही सांप्रदायिकता का पढता है ।

इस प्रकार साहनीजी ने इन कहानियों में धर्म में फैले पाखण्ड, ढोंग, अनाचार, व्यभिचार एवं अंधविश्वासों को समाज के सामने प्रकट करने हेतु व्यंग्य का आश्रय लेकर यथार्थ वर्णन किया है । साहनीजी की धार्मिक कहानियों की विषय–वस्तु धर्म के क्षेत्र की विसंगतियों का पर्दाफाश करती है । उनकी धर्म सम्बन्धी कहानियों की विषयवस्तु धर्म की प्रत्येक बुराई का उद्घाटन करती है । साहनीजी में इन कहानियों में धर्म की प्रत्येक बुराई का उद्घाटन करती है । साहनीजी में इन कहानियों में धमर की भूमिका पर बहुत ताकात के साथ प्रहार किया है । धर्म और धन्धा, धर्म और अमानवीयता, धर्म और मूल्यहीनता आज सब कुछ कितने पर्याय हो गये है – लुटेरे धर्म और प्रभु का कितना अच्छा उपयोग कर रहे है – इसका यथार्थ चित्रण साहनीजी की इन धर्म सम्बन्धी कहानियों में देखने को मिलता है ।

### ३.१.४.४ : आर्थिक कहानियाँ

साहनीजी ने भारतीय अर्थ तंत्र को ध्यानमें रखते हुए भी कुछ कहानियाँ लिखी है, जिनमें भारत के अर्थतंत्र की बुराईयाँ एवं कमजोरी दृष्टिगोचर होती है । साहनीजी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की अर्थव्यवस्था का अवलोकन अत्यन्त सूक्ष्मता से किया है । स्वतंत्र भारत में सर्वाधिक परिवर्तन अर्थव्यवस्था में ही हुआ है । कहने के लिए आर्थिक उन्नति हुई है , किन्तु यह आर्थिक उन्नति केवल आँकडो के माध्यम स ही परिलक्षित होती है । नम्र सत्य यह है कि समाज में

विषमता और अधिक बढी है । पहले भी पूंजीवादी वर्ग की और से गरीबों का शोषण हो रहा था, आज भी हो रहा है । साहनीजी की कहानियों में इस स्थिति को देखा जा सकता है । इनमें 'चीफ की दावत', 'निशाचर', 'भाग्यरेखा', 'पहचान', 'नीली आँखे', 'गंगो का जाया', 'जोत', 'मुर्गी की किमत', 'हमला', 'नया मकान', 'अपने अपने बच्चे', 'सुनहरी किरण', 'अभी तो मैं जवान हूँ', 'राधा–अनुराधा', 'त्रास', 'खूटे', 'लीला नंदलाल की', 'निशाचर', 'मरने से पहले' और 'चोरी' कहानियाँ है । 'चीफ की दावत' में मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को भीष्मजी ने अपनी इसी द्वन्द्वात्मक दृष्टि से उदघाटित किया है । 'निशाचर', 'भाग्यरेखा', और पहचान कहानियों में व्यक्ति नगरीय जीवन की नीली आँखे कहानी में भी नारी की आर्थिक विवशता का चित्रण किया गया है । 'गंगो का जाया' कहानी में भी अर्थाभाव में जी रही गंगा और उसके पति की कहानी है । 'जोत' कहानी एक किसान के जीवनसंघर्ष पराजय तथा बरबादी का चित्रण किया है । 'मुर्गी की कीमत' कश्मीर के एक मजदूर अहमद के साथ किये गये नियति के खिलवाड की कहानी है । 'इमला' कहानी में सत्ता, मद, पैसे तथा प्रतिष्ठा के आंतक और स्वभाव को ग्रामीण शिक्षक के संदर्भ में सामने लाया गया है । 'नया मकान' में उन पक्षधरों पर व्यंग्य किया गया है जो सिद्धांत का खोल पहने निहायत अक्सरवादिता तथा सुविधा का जीवन जीते है । 'अपने–अपने बच्चे' एक ऐसी बेबस स्त्री की कहानी है जिसका पति उसे छोड्कर चला गया है और वह दूसरों के घर में काम करके अपने और अपने बच्चे का पेट पालती है । 'सुनहरी किरण' कहानी में भटकती जिन्दगी बसर करनेवाले बन्जारो के समाज का चित्रण है । 'अभी तो मैं जवान हूँ' में साहनीजी ने वेश्याओं के जीवन को उभारकर गरीबी और अभाव की स्थिति को सामने लाया है । 'राधा–अनुराधा' कहानी निम्नवर्ग की एक किशोरी क गाथा है जिसे उसका बाप रूपयो के लालच में एक बूढे के हाथ बेच देना चाहता है । 'त्रास' कहानी यह बतलाती है कि आदमी की पहचार आदमियत के पहलू को सामने नहीं रखती बल्कि आर्थिक स्तर को देखती है । 'खूँटे' कहानी मध्यमवर्ग के स्वाथ और विवशता को रेखांकित करती है । ''लीला नंदलाल की' कहानी में साहनीजी ने एक स्कूटर चोरी क घटना के माध्यम से आज की व्यवस्था के निकम्मेपन को प्रस्तुत किया है । 'निशाचर' कहानी में भीष्मजी ने समाज के निम्मन और अपेक्षित वर्ग के अपने

जीवन संघर्षो को केन्द्र में रखा है । 'मरने से पहले' एक ऐसे वृद्ध की कहानी है जो अपनी जमीन के कब्जे के लिए वषोर अदालत के दरवाजे की ठोकर खाता रहता है । 'चोरी' कहानी उस बस कण्ड्कटर की है जो किसी समय में कॉलेज का होनहार विद्यार्थी था और परिस्थितिवश वह बस कंड्कटर बनकर रह गया ।

इस प्रकार साहनीजी ने भारतीय अर्थतंत्र एवं उसकी व्यवस्था का चित्रण अपनी कहानियों में किया है और उसकी वास्तविक स्थिति को प्रकट करते हुए अपनी अर्थसम्बन्धी कहानियों की विषयवस्तु को यथार्थता से चित्रित किया है ।

### ३.१.४.५ : बोधपरक कहानियाँ

साहनीजी ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से युक्त कहानियों के साथ ही कुछ कहानियाँ हेसी भी लिखी है, जिनमें बोधपरक बातो को ध्यान में रखा गया है । बोधपरक कहानियाँ लोगो को सही राह दिखाती है, उसे जीवन के यथार्थ का बोध कराती है । उसी कहानी में पहला स्थान 'जोत' का है । 'जोत' कहानी का जानकू नामक निम्नवर्गीय यात्र अंधश्रद्धा के घेरे में नजाने क्या क्या करता है । 'अनोखी हड्डी' कहानी भी एक वृद्ध व्यक्ति और सत्ता की लालसा रखनेवाले राजा को लेकर लिखी गई है । 'भटकती राख' कहानी का राजा और नवयुवक के बीच की तुलना बतलाती है । युवक गरीबों का उद्धार करते–करते दुनिया से बिदा ले लेता है । उसकी राख देश के कोने–कोने में बिखरा दी गई । लोग उसे देवता समझने लगे । जब युवक की राख उसी वक्त चमकती है जब देश में अमन होता है तो राजा की राख उस वक्त बेचेन होती है जब झोपडो से रोने की आवाज आती है । यह कहानी साहनीजी ने पं.नेहरूजी से प्रभावितहोकर लिखी होगी । क्योंकि नेहरूजी का यह स्वप्न था कि उनकी भस्म का कुछ हिस्सा खेतों में और कुछ गंगाजल में बहाया जाए । डॉ. संतोष शर्माने भी इस कहानी को ऐतिहासिक मानकर लिखा है कि, ''भीष्म साहनी की एक कहानी है 'भटकती राख।'' इसमें राख स्वयं पं. नेहरू की आत्मा देश में सुख–चैन देखने के लिए आज भी भटक रही है । इसी को भटकती राख कहा गया है ।''[२१] 'मालिक का बंदा' धार्मिक पाखण्ड को उजागर करनेवाली कहानी है । 'अहं

ब्रह्मास्मि' भाववादी दर्शन को उजागर करनेवाली कहानी है । दर्शन की अमूर्तता के पीछे कायरता छिपानेवाली प्रवृति को अंग्रेजी पुस्तक विक्रेता एक अंग्रेज परस्त चरित्र के माध्यम से व्यग्य का लक्ष्य बनानेवाली यह साहनीजी को बोधपूरक कहानी है । 'समाधि भाई रामसिंह' धार्मिक अंधश्रद्धा को माइने देने वाले जन की है । 'काँटे की चुभन' कहानी में दो मित्रो को माध्यम बनाया है । जो क्रमश: आर्यसमाज तथा सनातन धर्म पर निष्ठा रखनेवाले है । मैत्री होने पर भी धार्मिक स्तर पर उनमें समझोता नहीं था । 'शोभायात्रा' में सती के 'अहिंसा परमो धर्म:' वाले ढोंग को उजागर किया गया है । शाहनीजी ने सहजता से बोधपरक कहानियां के माध्यम से धर्म की ओट में समाज को गुराह करनेवाले लोगों पर करारा व्यंग्य किया है ।

### ३.१.५ : निष्कर्ष

इस प्रकार विस्तृत फलक हवं विषय – वैविध्य में फैला साहनीजी का यह कथा साहित्य आधुनिक युग का प्रामाणिक चित्र तो है ही, साथ में उसकी व्यंग्यात्मकता मानव समाज के संपूर्ण कैनवास को प्रस्तुत करती हुई यथार्थता का दर्शन कराती है । संक्षेप में साहनीजी की कहानियों का कथ्य जहाँ विराट है । ये सभी कहानियाँ समकालीन यथार्थ जगत के अगणित चित्र ही है क्योंकि यह उनके जीवनानुभव का परिवाम है । उनके लेखन में नवीन प्रयोगो की मौलिक प्रतिभा के भी भरपूर दर्शन होते है । अत: यह विकास एक गुणात्मक विकास है । साहनीजी के साहित्य में रूपाचित स्थितियाँ, घटनाएँ और सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक यथार्थ का अनुभव होता है । उनके यहाँ वैयक्तिक और सामाजिक अनुभव का द्वेत नहीं है, न उनके समकालीन जीवन का केन्द्रीय मनुष्य पाशविक या यांत्रिक दुनिया का कुंठित, अकेला, हताश, आत्म निर्वासित या अतीत में गुम । समाज का क्रांतिकारी परिवर्तन, मनुष्य की मुक्ति, एक बहेतर संसार की रचना यही वो परिप्रेक्ष्य है, जिसमें ये कहानिर्या लिखी गई है । उनके पीछे एक जीवन दर्शन और मूल्य दृष्टि है, एक विचारात्मक विवेक और विश्वदृष्टि है । यही कारण है कि मामूली से मामूली आदमी के दु:ख–दर्द, मध्यवर्गीय चरित्त की विसंगतियों, निम्न मध्यवर्गीय मजबूरियों से ही यह अनुभव संसार रूपायित हुआ है । इन कहानियों के चरित्रों की व्यापकता के कारण विषय–वस्तु भी इतनी

विविधात्मक हो गयी है कि समाज का कोई भी पक्ष छूट नहीं पाया । साहनीजी की कहानियों का कथ्य जहाँ विराट है, वहीं उसका शिल्प मौलिक है । क्योंकि यह उनके जीवनानुभव का परिणाम है । अब हम उपन्यासकार साहनीजी के बारे में चर्चा करेंगे ।

### ४.४.१ : हिन्दी उपन्यास साहित्य और साहनीजी

साहित्य मनुष्य के भावों, विचारो एवं क्रिया कलापों की अभिव्यक्ति है । साहित्य का सृष्टी सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी रचना की सामग्री समाज से ग्रहण करता है । इसलिए साहित्य मनुष्य के भावों, विचारों और क्रिया–कलापों की अभिव्यक्ति होने के साथ–साथ सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति भी हो जाती है । साहित्य और समाज के सम्बन्धों के बारे में परंपरा से बहुत कुछ कहा और लिखा गया है, क्युंकि साहित्य–सामाजिक जीवन से ही उत्पन्न होता है व प्राणरस ग्रहण करता है, अतइव दोनों का संबंध अत्यन्त घनिष्ठ माना गया है । समाज अपने स्तर पर साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य अपने ढंग से समाज पर अपनी छाप छोड्ता है । साहित्य और समाज का सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक और अन्योन्याश्रित है ।

यदि भारतीय साहित्य के विकासक्रम को देखे तो प्राचीनकाल से लेकर पूरे मध्यकाल तक साहित्य मुख्यत: पद्य रूप में ही उपलब्ध होता है, हमारे यहाँ १९ वी सदी से साहित्य और समाज के आधुनिक युग का प्रारंभ माना गया है । १९ वीं सदी में ही विज्ञान और औद्योगिकरण की शुरूआत हमारे यहाँ हुई  और १९ वी सदी से ही भारतीय समाज में आधुनिक चेतना का प्रसार और प्रसार हुआ । किसी सदी के साहित्य के सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना साहित्य में गद्य विद्या का आविर्भाव है । गद्यविद्या के साथ ही गद्य–भाषा भी १९ वी सदी की देन है । संपूर्ण भारतीय साहित्य में गद्य–विद्या १९ वी सदी में गद्य–भाषा के साथ सामने आयी और प्रेमस तथा अन्य वैज्ञानिक सुविद्याओ की वृद्धि के साथ गद्य के अनेक रूप प्रकाश में आये । इसलिए उपन्यास, कहानी एवं गद्य की अन्य विद्याओं को आधुनिक युग की देन माना जाता है ।

यों तो गद्य का स्वरूप क्षेत्रीय भाषाओं में मध्यकाल में भी उपलब्ध होता है, परन्तु जिसे खडीबोली का गद्य कहते है, उसका प्रारंभ १९ वी सदी में आधुनिक काल में विकसित हुई, उनमें

उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त निबंध, लघुकथा, आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण आदि प्रमुख है । इनमें भी उपन्यास और कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विद्याएँ है । खडीबोली गद्य की उपन्यास विद्या अपने आप में अनूठी एवं प्रभावशाली रही है, हम उपन्यास विद्या के विषय में विस्तार से देखे ।

### ४.१.१.१ : हिन्दी उपन्यास– उद्‌भव एवं विकास

'उपन्यास' शब्द दो शब्दो से बना है – उप+न्यास । 'उप' का अर्थ है – नजदिक और 'न्यास' का अर्थ है – रखना । अर्थात् हमारे इर्द–गिर्द पडी हुई कथा को जिस साहित्य स्वरूप द्वारा प्रस्तुत किया जाय, उसे उपन्यास कहते है । 'उपन्यास' शब्द मूलत: संस्कृत साहित्य का शब्द है, परंतु प्रचीन संस्कृत साहित्य में इस शब्द का प्रयोग उसी रूप में नहीं होता था, जिस अर्थ में यह शब्द आज प्रचलित है । डॉ.गोहिलजीने भी यह कहा है कि, ''संस्कृत लक्षण – ग्रंथो में 'उपन्यास' शब्द का प्रोग नाटक की 'प्रतिमुखसन्धि' के रूप में किया गया है और वहाँ इस शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि– उपन्यास: प्रसादनम् । अर्थात् ''प्रसन्न करने को उपन्यास कहते है ।''[२२] उपन्यास की एक और परिभाषा इस प्रकार दी गयी है कि ''उपयतिकृतोह्यर्थ: उपन्यास: प्रकीर्तित:'' अर्थात् ''किसी अर्थ को युक्ति संगत एवं सम्यक रूप में उपस्थित और विन्यस्त करना उपन्यास कहलाता है ।'' इसका तात्पर्य यह है कि संभवत: उपन्यासो में प्रसन्नता एवं आहलाद उत्पन्न करने की शक्ति एवं अर्थ को युक्ति रूप में उपस्थित करने की प्रवृत्ति के कारण इस प्रकार की रचनाओ को उपन्यास के नाम से पुकारा जाता था। परंतु तत्वत: देखा जाय तो संस्कृत नाट्य साहित्य के उस उपन्यास और आज के प्रचलित 'उपन्यास' शब्द में कोई साम्य नहीं है । अर्थ की दृष्टि से दोनो एक–दूसरे के बिलकुल भिन्न है । ऐसा माना जाता है कि 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बंगला साहित्य में किया गया । तत्पश्चात भारत की अन्य भाषाओं में इसका प्रयोग होने लगा । उपन्यास कथात्मक गद्य–साहित्य की एक प्रमुख विद्या है, जिसके स्वरूप का निर्धारण इन विद्वानो ने किया है । यथा, – उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचंदजीने उपन्यासो में मानव–चरित्र के चित्रण पर भार देते हुए लिखा है

कि, ''मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है ।''[२३] डॉ. श्यामसुन्दर दासने लिखा है कि, ''उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।''[२४] कतिपय विद्वानो के मतानुसार बाण की 'कादम्बरी' भारत का पहला उपन्यास है । उपन्यास शब्द का पर्यायवाची शब्द 'कादम्बरी' मराठी साहित्य में आज भी प्रचलित है ।

हिन्दी में उपन्यास नामक गद्य की विद्या का वर्तमान रूप में प्रादुर्भाव आधुनिककाल से ही माना जा सकता है । उपन्यास को मानव–सम्बन्धो की कथा समझा गया है । हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव– विकास के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते है कि, ''आधुनिक हिन्दी साहित्य के अन्य अंगो के समान उपन्यास का विकास भी अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और संपर्क से हुआ है । युरोप में उपन्यास का विकास रोमांटिक कथा – साहित्य से हुआ । युरोप का रोमांटिक कथासाहित्य भारतीय प्रेमाख्यानों की अरबों के माध्यम से विश्वयात्रा के समय उनसे विश्चित रूप में प्रभावित हुआ होता । इस प्रकार भारतीय कथा साहित्य अपने थोडे बहुत रूप में पुन: भारत लौटा । नि:संदेह भारतीय साहित्य में आधुनिक उपन्यासो के बहुत से उपकरण विद्यमान थे, किन्तु १९ वी शती के हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्‌भव और विकास अंग्रेजी साहित्य के परिणाम स्वरूप हुआ ।''[२५]

हिन्दी साहित्य में मैालिक उपन्यासो का उद्‌भव भारतेन्दु– युग में ही हो गया था । हिन्दी उपन्यास के इतिहास को एक शताब्दी जितना समय बित चुका है । इन में वर्षो में यह विद्या अनेक मोडो से गुजरी है । अध्ययन की सुविधा के लिए इस विद्या को तीन सोपानों में विभाजित किया गया है –

१) प्रेमचंद पूर्व युग – सन् १८८२ से १९१६ तक

२) प्रेमचंद युग – सन् १९१६ से १९३६ तक

३) प्रेमचंक्षेत्तर युग – सन् १९३६ से आजतक

लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरू' उपन्यास हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है। डॉ. महेन्द्र भट्टनागर के शब्दो में ''लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरू' को हिन्दी के प्रथम

उपन्यास का गौरव प्राप्त है । ''[२६] श्री प्रकाश के शब्दो में, ''श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरू' को अधिकांश विद्वानोने वस्तु, शिल्प, भाषा आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी का पहला उपन्यास माना है ।''[२७] सर्वप्रथम उपर्युक्त तीनों विभाजन को विस्तृत रूप से देखने का प्रयत्न करे, जो वास्तव में उपन्यास का विकास माना जाता है ।

### ४.१.१.२ : विकास: प्रेमचन्द पूर्व युग: १८८२ से १९१६ तक

उपन्यास आधुनिक युग की लोकप्रिय विधी है । प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासकारों ने प्राचीन परम्परा के आधार पर विषय और उद्देश्य को प्रस्तुत किया है । पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सारित्सागर और विविध आख्यायिकाओं में से अपना कथ्य चुना है । इन उपन्यासकारों का उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करने के साथ समाज सुधार का भी रहा है । इस युग के उपन्यासकारों ने घटना को महत्त्व दिया । पाश्चात प्रभाव क्रमश: उपन्यास की शैली पर बढता हुआ नजर आता है । पाठकों की सुविधा के लिए प्रेमचंदपूर्ण युग के उपन्यासो को तीन विभागो में विभाजित किया जाता है । –

१) मनोरंजन प्रधान उपन्यास

२) उपदेश या बोधप्रद उपन्यास

३) ऐतिहासिक उपन्यास

मनोरंजन प्रधान उपन्यासों में लेखक उसकी घटना इस तरीके से प्रस्तुत करता है कि पढनेवाला दंग रह जाये, दाँतो तले अंगुलियाँ दबाने लगे और कह उठे – 'कमाल है'। उपन्यासकार अनेकविध 'करिश्मा' को प्रस्तुत करता जाता है और पाठकों का कौतुहल शनै: शनै: बढता जाता है । मनोरंजन प्रधान उपन्यास की भाषा सरल बोलचाल की भाषा रही है । जासूसी उपन्यास में जासूस अपने बुद्धि कौशल से पाठको को विस्मित करता है और घटना का भेद प्रस्तुत करके खोलकर कौतूहल का शमन करता है । प्रमचंदपूर्व युग के उपन्यासकारों में बाबू देवकीनंदन खत्रीजी का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है । इनके उपन्यासों में तिलस्म का एक जाल फैला हुआ नजर आता है । डॉ. कृष्णा मजीठिया ने अपने 'प्रेमचंद पूर्व हिन्दी के जासूसी व

तिलस्मी उपन्यास' नामक लेख में देवकीनंदन खत्रीजी के बारे में लिखा है, ''उस युग में जब हिन्दी क्षेत्र में उर्दू का बोलबाला था, हिन्दी के पाठक बहुत कम थे । खत्रीजी ने हिन्दी को अखंट्य पाठक दिये । उनके उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें पढने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखी । यह खत्रीजी की कलम का कमाल था।''[२८] खत्रीजी की प्रसिद्ध तिलस्मी रचनाओं में 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता संतति' और 'भूतनाथ' अत्याधिक लोकप्रिय रचनाएँ रही है । कहा जाता है कि भूतनाथ के सम्पूर्ण होने के पहले खत्रीजी का स्वर्गवास हो गया । इसलिए शेख १५ भाग इनके सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने लिखें ।

मनोरंजन के साथ–साथ उपदेश के तत्त्व को प्राधान्य देनेवाले उपन्यासो में बालकृष्ण भट्ट का 'सो अजान और एक सुजान', राधा कृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' और लज्जाराम मेहता के 'आदर्श हिन्दू', 'बिगडे का सुधार' इत्यादि उपन्यासों का समावेश होता है । उपदेश प्रधान उपन्यासों का उद्देश्य उपदेश या बोधप्रद बातें कहकर समाज में सुधार लाना होता था । अत: इस युग में उपदेश प्रधान उपन्यास भी लिखे गये । कुछ उपन्यासकारों ने इतिहास को प्रधानता देकर ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे । इस प्रकार के उपन्यासों का विषय–वस्तु इतिहास से लिया जाता था । इस प्रकार के उपन्यास लिखनेवालों में श्री किशोरीलाल गोस्वामी का नाम प्रमुख है, जिन्होंने इस युग में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, तिलस्मी इत्यादि सभी विषयो को लेकर उपन्यास लिखे है । इस युग में अन्य उपन्यासकार गोपालराम गहमरी थे, जिन्होंने हिन्दी में जासूसी उपन्यास का प्रारंभ किया था । इस तरह इस युग में विभिन्न विषयों पर उपन्यास लिखे गये, अपितु इनका उद्देश्य विशेषकर मनोरंजन के साथ ज्ञान–प्रदान था ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचनद पूर्वयुग एक निर्माण काम रहा है, जिसके अंतर्गत उपन्यास अपने शैशावावस्था में था । सरल बोलचाल की जन सामान्य सुलभ भाषा का प्रयोग करते हुए सि युग में उपन्यासकारों ने उपन्यास विद्या को अत्यंन्त लोकप्रिय बनाया । इस काल के उपन्यासो के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते है, ''प्रेमचंद से पूर्व इस काल की कोई भी ऐसी कृति नहीं है, जो कि साहित्य की स्थायी सम्पति बनने के योग्य हो । प्रेमचन्द पूर्व के

उपन्यासो का ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है । इस काल के उपन्यासों में जीवन की आलोचना और गम्भीर दृष्टि का अभाव है ।''[२९]

### ४.१.१.३ : प्रेमचन्दयुग सन १९१६ से १९३६

प्रेमचंद युग हिन्दी उपन्यास साहित्य का स्वर्णकाल है । प्रेमचन्द पूर्ण युगीन साहित्यकारों ने मिलकर उपन्यास विद्या की नींव डाली और उस पर भव्य प्रासाद खडा करने का कार्य इस युग में साहित्यकारों ने किया । इस युग के प्रमुख साहित्यकारों में स्वयं प्रेमचंदजी, प्रसादजी, विशवम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र' प्रसिद्ध है । प्रेमचंदजी ने हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा दी है । डॉ. महेन्द्र भटनागर के शब्दो में, ''प्रेमचंद को लोगो ने हिन्दी साहित्य का प्रभम सौन्दर्य प्रसाधक रहा है । उन्होंने उपन्यासों के अंग–प्रत्यंग को इस सौष्ठवपूर्ण ढंग से सजाया कि कहीं कोई भी कही असंगठित सी न मालूम पडे । जिसे अंग्रेजी में 'ओडरली अनफोल्डिंग' कहते है । वह अपने पूर्ण गौरव के साथ सामने आया ।''[३०]

इसी युग से उपन्यास को एक मंजी हुई, कसी हुई मुहावरेदार भाषा मिली, जिसमें भाषाभिप्यंजकता के दर्शन हुए । इसे साथ ही साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का चित्रण प्रारंभ हुआ । ग्रामीण समाज का सर्वप्रथम चित्रण प्रेमचंदजी के उपन्यासो में मिलता है । इस युग के उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में मध्यमवर्ग के जीवन का चित्र यथार्थ ढंग से किया है । इसके साथ ही विधवा नारी की समस्याओं का निरूपण भी यथेष्ठ ढंग से हुआ है । भाषा और रचना शैली की दृष्टि से उपन्यास शिल्प का इस युग में उत्तरोत्तर विकास होता गया । डॉ. शिवकुमार ने यथार्थ लिखा है, ''उपन्यासकार सम्राट मुंशी प्रेमचंद के पदार्पण से उपन्यास साहित्य की रिक्तता की पूर्ण अर्थो में पूर्ति हुई । वस्तुत: वे हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार तथा युग–प्रवर्तक है । इनके उपन्यासों में प्रथम बार जन–सामान्य को वाणी मिली और कला केवल मनोरंजन का खिलवाड न रहकर जीवन मर्मो को उद्घाटित करनेवाली बनी । ''[३१] इस युग के महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'गोदान', 'गबन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'सेवासदन', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला', 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती', 'माँ',

'भिरारिणी', इत्यादि सभी उपन्यास प्रमुख है । वास्तव में प्रेमचंदजी शताब्दियों से पद्दलित अपमानित और अपेक्षित कृषको की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों के महत्त्व के प्रचारक थे । यदि हम उत्तर भारत की समस्त जनता के आचा–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दु:ख–सुख और सूझ बूझ जनना चाहते है, तो प्रेमचंदजी से उत्तम परिचायक अमें ओर कोई नहीं मिल सकता । प्रेमचंदजी ने अपने उपन्यासों में झोंपड्यिों से लेकर महलों तक, खोमचे वाले से लेकर बैंको तक, गाँव से लेकर धारा–सभाओं तक, जीवन के हर पहलू पर बडे ही कौशलपूर्वक एवं प्रामाणिक भाव से अपनी लेखनी चलायी है । अत: यह पूरा युग उन्हीं के नाम से पहचाना जाता है ।

इस प्रकार प्रेमचंदयुग में उपन्यास विद्या के अंतर्गत विशाल जन–जीवन और विशेषत: भारत के किशान और मध्यवर्गीय जीवन की अनेकमुखी समस्याएँ कलात्मक रूप से चित्रित हुई ।

### ४.१.१.४ : प्रेमचंदोत्तर युग: सन् १९३६ से अब तक

प्रेमचंदजी का निधन सन् १९३६ में हुआ । इसी युग में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई । इसके साथ ही एक नये साहित्यिक युग का प्रारंभ हुआ । डॉ. मिश्रजी के अनुसार, 'हिन्दी कथा साहित्य को प्रेमचंद की सबसे महान दिन यथार्थवाद है । प्रेमचंद की इस परम्परा को प्रगतिशील जीवन दृष्टि से प्रभावित परवर्ती कथाकार न केवल आगे बढाते है, सम–सामयिक अनेक कथाकारों के विपरीत प्रयत्नो से उसकी रक्षा करते हुए, उसे पुष्ट भी करते हैं । यशपाल, रांगव राघव, राहु, सांकृत्यायन, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, नागार्जुन, मार्कण्डेय, अमरकान्त, राजेन्द्र यादव एवं अमृतराय का स्मरण इस क्रम में स्वाभाविक ही है । ''(३२) प्रेमचंदजी के बाद हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चित्रण अधिक यथार्थ ढंग से होने लगा । इस युग के प्रारंभ में भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भी बडे भारे परिवतरन आये और कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई, जिसका प्रभाव इस युग के समग्र साहित्य पर पडना स्वाभाविक था । स्वतंत्रता संग्राम,

भारत की आजादी के बाद देश की स्थिति एवं युग की विभिन्न परिस्थितियों तथा युगीन घटनाओं की गहरी छाप तत्कालीन उपन्यास साहित्य में दृष्टिगोचर होती है ।

इस युग के उपन्यासकारों ने अनुभूत सत्य को शब्द–बद्ध किया और उसे बोधकता के साथ व्यक्त करने लगे । गरीबी, बेकारी, पारिवारिक विघटन, टूटते दाम्पत्य जीवन और अभावों का चित्रण उपन्यासों में सर्वत्र अधिक होने लगा । मार्कस, फ्राईड और सार्त्र की विचारधारा के प्रभाव में आकर जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी और अज्ञेय जैसे साहित्यकारोने भूख, काम और अस्तित्व को लेकर उपन्यास लिखे । इस तरह इस काल के उपन्यासकारों पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट झलकने लगा । काम और कुष्ठा का अधिकतर चित्रण होने से एक विकृति सी नजर आने लगी । जीवन के प्रति घोर निराशा के कारण व्यक्तित्व कुंठित होने लगा और एक हिनता ग्रंथि फैलने लगी, जिसका चित्रण इस युग के उपन्यासों में अधिक दिखाई देता है । दूसरी और मुक्त यौनाचार की प्रवृत्तियाँ समाज में व्यक्ति–स्वातंत्र्य के आधाकिय के कारण बदलने लगी । डॉ. बाष्णेयजी के अनुसार, ''स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की एक उल्लेखनीय दिशा यौन संम्बन्धो की विवेचना भी रही है । किन्तु आज केवल सेक्स, परिवार–विघटन, व्यक्ति आदी की छोटी सी दुनिया में विचरण करनेवाले बहुसंखयक उपन्यासकारों के अतिरिक्त कुछ उपन्यासकार ऐसे भी है, जो स्त्री–पुरूष के सेक्स स्वातंत्र्य, परिवार आदि से सम्बन्धित परिवर्तित परिवेश में दायित्वबोध का परिचय देते हुए भी देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विसंगतियाँ पर दृष्टिपात करते और नई पीढी की आशा–आकांक्षाओं का चित्रण करते है ।''[३३] भूख, काम और यौनाचार के चित्रणों की बाढ मे भी कुछ ऐसे चित्रण हुए है, जिनसे श्रद्धा और आस्था के दर्शन होते है । घोर निराशा में आशा की एक किरण नजर आती है ।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने अपने प्रारंभिक रोमानीयत, भावुकता, नैतिकता, उद्देशवादिता इत्यादि से मुक्ति पाकर यथार्थ के नये आयामो की सृष्टि की है । इस संदर्भ में डॉ. नेमीचन्द जैन का मत है कि, ''पिछले दस–पन्द्रह वर्षो में हिन्दी–उपन्यास अपनी सार्थकता के लिए कई नये परिप्रेक्ष्य खोजता रहा है और अब उसमें व्यक्ति के आंतरिक सत्य का बाह्य परिवेश के समंजन, रोमान्टिक दृष्टि के बजाय जीवन के यथार्थ साक्षात्कार का प्रयास, भावुकता या भाव

प्रधानता के स्थान पर तीखापन, कलात्मक संयम और निर्ममता आदि विशेषताएँ क्रमश: अधिकाधिक दिखने लगी है । अब उपन्यासकार प्राय: यह प्रयत्न करता है कि गहन से गहन अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भी साधारण जीवन के यथासंभव सहज और दैनन्दिनपक्षो का ही सहारा ले, बल्कि शायद उसे यह अनुभव हो सकता है कि गहनतम सत्य और उसकी अनुभूति साधारण जीवन में ही अधिक सम्भव है ।''[३४] वर्तमानयुग के उपन्यासकारों ने जीवन की विसंगतियो का चित्रण यथार्थ ढंग से किया है । सहजानुभूति की सहजाभिव्यक्ति आज के उपन्यासों की एक विशिष्टता रही है । उपन्यास विद्या का सौ वर्षो में हुआ विकास सराहनीय है ।

### ४.१.१ : उपन्यास के तत्त्व

उपन्यास की आलोचना करते हुए विद्वान पहले छ: तत्वों की महता पर ध्यान देते थे । जैसे कथावस्तु, चरित्र–चित्रण संवाद या कथोपकथन, माथा–शैली, देशकाल, वातावरण एवं उद्देश्य । इन छ: तत्वो का पूर्णत: निर्वाह किसी भी उपन्यास में होना चाहिए, ऐसा विद्वान का मानना था, लेकिन आज स्वातंत्र्योत्तर युग, जिसे उतर आधुनिक युग कहा जाता है और जो उपन्यास की दृष्टि से समृद्ध कहा जाता है, उसमें उपन्यास साहित्य में कथ्यगत एवं शिल्पगत वैविध्य को ही प्राधान्य दिया जाता है । अर्थात कथ्य एवं शिल्प दोनों की दृष्टि से उपन्यास की आलोचना हो । ये दोनों तत्व आज के युग में उपन्यास विद्या के मानदाझ माने जाते है । इन दोनों तत्वों के साथ कभी–कभी विद्वान चरित्र तत्त्व की अलग से आलोचना करते हैं । अत: चरित्र को भी उपन्यास के लिए महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है । ऐसा होने पर भी आज के युग में कथ्य शिल्प में ही सब विशेषताएँ सम्मिलित है, ऐसा मानकर ही इन दो विशेषताओं का निवाह उपन्यास साहित्य में होना पर्याप्त माना जाता है । विद्वानो के मतानुसार कथ्यगत विशेषताओं के अंतर्गत कथानक, चरित्र, रस, भाव, परिवेश, उद्देश्य इत्यादि की चर्चा होती है और शिल्पगत विशेषताओं के अंतर्गत भाषा, शैली, संवाद, छन्द, अलंकार, शब्द, चयन, कहावते, मुहावरे आदि सभी बातों की चर्चा होती है । वर्तमान उपन्यास साहित्य के कथ्य शिल्प की विशेषताओं को लेकर डॉ. शिवकुमार लिखते है, ''उसके (उपन्यास के) शिल्पविधान के क्षेत्र में रिपोर्ताज, वर्णनात्मक,

आत्मकथात्मक, व्यंग्यात्मक, डायरी–संस्मरण, रेड्यिो कमेन्टरी तथा संभाषण आदि शैलियों का उपयोग कर नये–नये औपन्यासिक प्रयोग किये जा रहे है । अतअ कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास का भविष्य उत्साहजनक प्रतीत होता है ।''[३५]

### ४.१.२ : हिन्दी उपन्यास : विषय – वैविध्य

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास को देखा जाय, तो इस विद्या में प्रारंभ से लेकर आज तक बहुतसी विविधता देखने को मिलती है । कई उपन्यासकारों ने इस विद्या को अपने नवीनतम प्रयोग से सजाया सँवारा है । प्रेमचंदजी से पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य में लालाश्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी जैसे उपन्यासकार हो गये, जिन्होंने उपन्यास में कल्पना, तिलस्मी एवं जासूसी का प्रयोग करके उपन्यास को रोमांचक बनाया था । इस युग के उपन्यासो के सम्बन्ध में भी श्री राजनाथ शर्मा लिखते हैं, ''इन उपन्यासों में ऐ प्यारी का बहुआ लिए कुशल ऐप्यारी के दाँव–पेच, तिलस्मों के अद्‌भूत लोक, विचित्रताओ, अद्‌भूत घटनाओं आदि का ऐसा कुशल संयोजन हुआ है कि उपन्यासकार पाठकों की इस जिज्ञासा को कि 'आगे क्या हुआ' निरन्तर उभारे रहता है । इन उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता यह है कि इतनी खंडो में विभाजित होते हुए भी कथा में कहीं भी शिथिलता नहीं आ पाती ।''[३६]

फिर प्रेमचंदयुग में प्रेमचंदजी, प्रसादजी, विशवम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सियारामशरण गुप्त, चतुरसेन शास्त्री वृन्दावनलाल वर्मा, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्रकुमार, भगवती प्रसाद वाजपेये, सुदर्शन, निराला आदि अनेक प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए, जिन्होंने उपन्यास विद्या को कल्पना एवं तिलस्मी के जाल से बाहर निकाला और समाज के सामान्य मानव के जीवन के साथ जोडकर उपन्यास के भीतर समाज एवं आम मानव की जिन्दगी को स्थान दिया । श्रीराम प्रसाद मिश्रजी लिखते है, ''प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को लक्ष्य दिया । वे उसे ऐयारी, तिलस्मी, जासुस और काल्पनिक भूमि से निकालकर स्वाभाविकता के ध्येय की और प्रेरित कर सके।''[३७]

ऐसे ही प्रेमचंदोत्तर युग में अनेक उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे और आज भी स्वातंत्र्योत्तर युग में कई उपन्यासकार उपन्यास लिख रहे हैं । कई नयी–पुरानी युवा प्रतिभाओं ने इस काल के उपन्यास साहित्य को विषय वैविध्य और सम्पन्नता प्रदान करने में अपना योगदान दिया है । यशपाल, रांगये राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र अज्ञेय आदि पूर्वकालीन रचनाकारों की परवर्ती रचनाएँ इस काल को उनकी परिष्कृत प्रतिभा से लाभान्वित करती रहती रही है । फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती आदि नये रचनाकारों ने परिवेशानुकूल उपन्यास को नया रूप दिया, तो रामदरश मिश्र, विवेकीराय, जगदीशचन्द्र, हिमांशु जोशी, धीरेन्द्र अस्थाना, नरेन्द्र कोहली, हरिशंकर परसाई आदि साठोतर रचनाकारों ने उसे नये आयाम प्रदान किये है । अन्य विद्याओं के समान उपन्यास में भी वैयक्तिक मूल्यों से लेकर जनवादी मूल्यों तक की यात्रा के कई पडाव दिखाई देते है । बडे तौर पर आजादी के बाद मूल्यविघटन, राजनीतिक प्रपंच, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार और व्यवस्थागत दबावों में पिसते लोग उपन्यास के केन्द्र में आये, तो दूसरी ओर वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करनेवाले उपन्यासों की बडी मात्रा में सर्जना हुई है । सि विषय में डॉ. शिवकुमार शर्मा यथार्थ लिखते है कि, ''आज का हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द द्वारा प्रदर्शित स्थान से काफी आगे निकल चुका है । आज हिन्दी उपन्यास साहित्य में पर्याप्त विषय वैविध्य है । उसमें सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आंचलिक, व्यक्तिप्रधान, प्रगति एवं प्रयोगपरक, मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषणात्मक आधुनिकता के बोध व सौन्दर्य की समाहिति से युक्त तथा अनुधातन जीवन की नाना जटिलताओं व समस्याओं को संदर्भित करनेवाले उपन्यास निरन्तर लिखे जा रहे है ।''[३८]

फलत: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में उपन्यास की व्यक्तिचेतना प्रधान, जनचेतना प्रधान, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, प्रोगवादी, आधुनिकतावादी, आँचलिक, समाजवादी, राजनैतिक–व्यंग्य बोध, व्यंग्यात्मक, लघुव्यंग्यात्मक आदि कई विद्याएँ प्रचलित हुई है ।

अंत में हिन्दी उपन्यास साहित्य के विषय वैविध्य को डॉ. गणेशन के शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं, ''जीवन की यथार्थ समस्याओं की गम्भीरता से अनभिज्ञ रहकर आश्चर्यमय अनुसंधियों से आँखमिचौनी खेलनेवाले देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी से लेकर जीवन की गम्भीर से गम्भीर समस्याओं का मुँह–दर–मुँह सामना करनेवाले प्रेमचन्द तक, जीवन की विषमताओ के सामाजिक स्वरूप को स्पष्ट करनेवाले प्रेमचन्द और प्रसाद से लेकर मानव मन की गहराई में उन विषमताओं के मूल का अन्वेषण करनेवाले जैनेन्द्र जोशी, अज्ञेय और देवराज तक जीवन के उत्कृष्ट आदशोर के मधुर स्वप्न देखनेवाले आदर्शवादी श्रीनिवासदास और लज्जाराम मेहता से लेकर कुत्सित से कुत्सित यथार्थो को निरावृत प्रस्तुत करनेवाले उग्रवादी उदग्र और मन्मथनाथ गुप्ततक, अतीत की विस्मृतियों को स्मृतितट जो विस्तृती और विविधता प्राप्त कर सका है, वह सचमुच एक उज्ज्वल भविष्य की आशा प्रदान करनेवाला है ।''[३९]

### ४.१.३ : साहनीजी के उपन्यास

साहनीजी के उपन्यासों में वर्णित विषयवस्तु प्रेमचंदजी के उपन्यासो की विषयवस्तु से कुछ अलग नहीं है । प्रेमचंदजी के उपन्यास का परिवेश ग्रामीण भारत है, किन्तु साहनीजी ने न केवल ग्रामीण परिवेश को लिया बल्कि भारतीय समाज के सम्पूर्ण परिवेश को ग्रहण किया है और परिवेश जनित विसंगतियों एवं दोगलेपन को उभारने का प्रयास किया है । साहनीजी के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समाज के सुन्दर चित्र उभरते है, जो न केवल मध्यमवर्गीयजनों की कठिनाईयोन को व्यक्त करते है, बल्कि मध्यमवर्गीय संघर्ख की प्रवृति के घोतक है ।

साहनीजी ने कुल ७ उपन्यास लिखे हैं । जो इस प्रकार है;

झरोखे, कड्याँ, तमस, बसंती, मैयादास की गाडी, कुंतो, नीलू नीलिमा नीलोफर; अब हम इन उपन्यास में साहनीजी के स्थान और उपन्यास की चर्चा करेंगे । हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंदजी की परंपरा में ही परसाईजीने समाज पर अपनी कलम चलायी है । समाज की विकृतियों को उन्होंने खोल के रख दिया है । अपने लेखन के प्रारंभ से ही साहनीजी कभी भी कोरे आदर्शवाद को महिमागान के लिए लेखन को माध्यम नहीं बनाते, बल्कि समाज की

वास्तविक परिस्थिति की पस्तो को उजागर करते हुए पाठको को सोचने समझने के लिए ह बडी जबान छोड देते है । उनकी रचनाओं की तरह उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है । सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू जो आज भी पाठको को आकर्षित करता है, वह यह है कि रचना के किसी मोड पर कोई भी पात्र जिस रूप के सामने आता है, उससे अन्त तक पाठक घृणा नहीं कर सकते । प्रेमचंदजी की विरासत लिये साहनीजी प्रेमचंदजी को दोहराते नहीं है, बल्कि एक नयी दिशा भी देते हैं, जो न केवल समकालीन और सार्थक है, बल्कि साहनीजी के लेखकीय दायित्व के बोध को अलग से चिन्हित करते हैं ।

साहनीजी के उपन्यास को तीन प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

१) सामाजिक उपन्यास

२) सांप्रदायिक उपन्यास

३) घटनाप्रधान उपन्यास

### ५.१.३.१ : सामाजिक उपन्यास

उपन्यास कथा साहित्य है । इसका विषय और क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे किसी परिधि में बाँधना कठीन कार्य है । डॉ. वखतसिंह गोहिल साहब ने कहा है कि, ''यदि वर्ण्य–विषय उद्देश्य एवं शैली के आधार पर वर्गीकृति किया जाए तो अनेक प्रकार के उपन्यासो की कल्पना की जा सकती है । जिनमें सामाजिक उपन्यास भी समाविष्ट होता है, जिनसे सामाजिक युग के विचार, आदर्श और समस्यायें चित्रित रहती है । सामाजिक समस्यायें ही इन उपन्यासों का वर्ण्य–विषय होती है । ऐसे उपन्यास प्राय: राजनीतिक और सामाजिक धारणाओ तथा मतवादों से विशेष प्रभावित होते है ।''[४०] लेखक अपने समय के आदर्शो के चित्रण के लिए पात्रो की रचना करते है । इन उपन्यासो का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं, रूढियों, आचार–विचार, मान्यताओं इत्यादि को प्रस्तुत करना होता है । कुछ ऐसे लेखक है, जो उन सामाजिक धारणाओ और मूल्यों का विरोध नहीं कर पाते, जो अनुपयुक्त है । पर कुछ हेसे समर्थ उपन्यासकार है, जो बडी हिंमत के साथ रूढियों को मित्र देने का प्रयत्न करते है । जैसे प्रेमचंद जैसे समर्थ साहित्यकार विधवा–

विवाह की समस्या को उठाकर भी क्रियान्वित नहीं कर सके, जबकि भैखीप्रसाद गुप्तने मटरूसिंह के पात्र के माध्यम से 'गंगामैया' उपन्यास में इसे चरितार्थ कर बताया है । यह लेखक की अपनी देन है ।

इन प्रमुख मेंदो के अतिरिक्त उपन्यास के और भी भेस स्वीकार किये जा सकते है जैसे भाव प्रधान उपन्यास, व्यंग्य प्रधान उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास तथा आँचलिक उपन्यास इत्यादि । परंतु इन सभी प्रकारो का अंतर्भाव उपर्युक्त चारो प्रकारों मेन ही मान लिया जाता है । जैसे अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' तथा 'नदी के द्वीप' मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जिनकी गणना व्यक्तिप्रधान या चरित्रप्रधान उपन्यासो में की जाती है । हेसे ही यशपाल के 'अमिता' और 'दिव्या' उपन्यासों की गणना ऐतिहासिक उपन्यासों में की जा सकती है, जबके इनमें कल्पना की प्रधानता है । 'राग–दरबारी' एक व्यंग्य–प्रधान उपन्यास है, जिसमें समाज, राजनीति और सरकार पर बड़ा करारा व्यंग्य किया गया है । इसे व्यंग्यप्रधान उपन्यास मानते हुए भी विद्वान घटना–प्रधान उपन्यासों में गिनना अधिक उचित मानते हैं ।

इसी विवेचन के आधार पर साहनीजी के उपन्यासो के अंतर्गत सामाजिक उपन्यास में 'झरोखे', 'कड्यिाँ', 'बसंती', 'कुंतो' है । '

### ५.१.३.१.१ : झरोखें

'शरोखे' उपन्यास सन् १९९७ प्रकाशित हुआ था । यह उपन्यास मनोविश्लेषणात्मक और आत्मकथात्मक भी कहाँ जा सकता है । इस उपन्यास का बालक साहनीजी है ऐसा कहा जाता है । इसमें आर्यसमाजी हिन्दू परिवार का चित्रण किया गया है । सि उपन्यास में धार्मिक आडम्बरो, मिथ्या आदर्शो, झूठे सिद्धांतो, रूढ परिपाटियां के विरूद्ध असाम्प्रदायिक सामाजिक दृष्टिकोण की खोज की गई है । परिवार में घटने वाली छोटी–छोटी घटनाओं का निरूपण किया है। ऐसा ही प्रयास नरेश मेहता ने अपने उपन्यास 'धूमकेतु एक श्रुति' में किया है । यह उपन्यास साहनीजी के अतित को चित्रित करता है । जिसमें लेखक के सामने यह प्रश्न भी खड़ा है कि, ''जीवन की गति–विधि को सुत्रबद्ध करने वाले कोई सुसंगत रूप देने की चेष्टा करती है?'' (४१)

इसी प्रश्न का उत्तर साहनीजी अपने 'कुछ यादे' नामक लेख में लिखते है कि, ''बचपन का लम्बा–चौडा प्यैार आखिर किस काम का ? शायद इससे अपने आपको समझने में मदद मिलती है । यह एक तरह से उन तंतुओं की खोज भी है जिससे संवेदन रूप लेता है, क्योंकि संवेदन कहीं न कहीं बचपन में ही जन्म लेकर उसी खाद में से अपना पोषक ग्रहण करता है ।''(४२)

उपन्यास के आरंभ में स्वयं साहनीजी लिखते है, 'सजिंदगी पर के कुछेक झरोंखे, लगता है अपने हाथो से खोल रहा हूँ ।''(४३) इस उपन्यास के बालक का कोई नाम नहीं है । शाम होती है और बालक को लगता है कि असंख्य भूत–पिशाच उसकी छत पर आये है । उसकी और झाँकते है । उसे तरह–तरह के ड्रावने सपने आते है । वह छत से उतरकर करमे में जा आते है । और बालक को ड्राते है । तब बालक के मुँह से 'ऊँह' शब्द निकलता है । माँ अस्वस्थ बालक की भावनाओं से परिचित है । बालक की परेशानी कम करने के लिए माँ बारहमासा सुनाने लगती है,

**चेतर चित बिच समझ पियारे दुनिया झूला भाणा ई ।**

**जिन्हा नाल लुध लायी दोस्ती उन्हांवी चला जाणा ई ।''(४४)**

बालक का घर आर्यसमाजी सिद्धांत पर टीका हुआ था । पूरे उपन्यास के केन्द्र में बालक है । माँ बालक के सामने गीत गाती है तो बालक के पिताजी कहते है कि यह गीत निराशा के है, जिसका बालक पर बुरा असर पड सकता है । पर माँ को ऐसे गीत प्रीय होने की वजह से वही गाने गाने की जीद करती है । उपन्यास में कठोर अनुशासन पर बल दिया जाता है जिसमें लडकियों का घर से बाहर देखना, फिल्मी गीत सुनना और जन्मुक्त होकर हंसना अशिष्ट माना जाता है । इस प्रकार उपन्यास में प्रवृति दमन के परिणाम स्वरूप व्यक्तित्व के दमन का चित्रण किया गया है । इस आर्य समाजी परिवार में घर का नौकर तुलसी भी नही बच पाता है । जब भी तुलसी शौच के लिए बाहर जाता है, महोल्लेवाले पत्थर मारकर उसे भगा देते है । जब माँ पिताजी को यह बात कहती है कि तुलसी भी अपने वाले शौचालय का प्रयोग करे तो क्या हर्ज है ? तब पिताजी इन्कार कर देते है । उपन्यास में जाति भेद भी दिखाई देता है । उपन्यास में शगडी–बगडी का हीनता बोध, तुलसी का घरेलू सम्बन्ध, पंड्तिजी, व्यापार के लिए पिताजीका जाति–

भेद को दूर रखना, गुरूकुल में पढने से बडे भाई का इन्कार, तुलसी का विद्रोह, विमला बहन की मृत्यु आदि घटनाओं का सबसे अधिक प्रभाव है । जब एक ही महोल्ले में अलग–अलग धर्म के लोग रहते है फिरभी उनमें घृणा है । इसका संवाद देखे तो बालक कभी–कभी उत्साहित होकर टीन बजाकर जोर से बोलता है कि, ''उठो मुसलमानो रोजे रखो।''(४५) फिर पिछवाडे से किसी औरत की आवाज आती है कि, ''अरी लछमी, तेरा बेटा हमे साल भर रोजे रखवाता रहता है।''(४६) अलग–अलग धर्म माननेवाले लोग में जब मुसलमान के घर बकरी भूनी जाती थी तो हिंदू परिवार शुद्धिकरण के रूप में हवन करवाता था । पिताजी तुलसी को यज्ञ के सारे मंत्र कंठस्थ करने और पढाने की इच्छा व्यक्त करते है, तो माँ विरोध व्यक्त कर कहती है कि तो घर का काम कौन करेगा ? इस प्रकार हम देख सकते है कि अगर कोई मजदूर पढ–लिखकर ऊँचा उठता चाहे तो उसे कोई ऊँचा उठा हुआ नहीं देख पाता है । तुलसी एक दिन माँ से कहता कि मैं सारी उम्र बरतन ही माँजता रहूँगा ? उस बात पर माताजी चिल्लाकर कहती है कि मना किया या इसे मत पढाओं, जब आया था तो जंगली जानवर था, आज घर के काम से इसे चिढ हो गई है । तालीम इन्सान का जेवर होती है । इन घटना से हम मजदूर वर्ग की स्थिति जान सकते है । उपन्यास में छोटी बहन विमला की बिमारी के कारण हुई मौत की बात है । ससुराल से आई विद्या का बच्ची को जन्म देना है । बालक बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था के घटनाक्रम को देखता है । बडे भाई बलदेव का छोटे भाई को व्यापार के तौर तरीके सिखाना और खुद बाहर की तैयारी में लग जाना, पिताजी की सिफारिश पर तुलसी को बेंक में नौकरी मिलना, विद्या बहन के बेटे का तुलसी के बेटे का खयाल रखना, बेंक से तुलसी को निकाल देना आदि घटना के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है ।

इस प्रकार हम देख सकते है कि, भीष्मजी का प्रथम उपन्यास 'झरोखे' सचमुच ही अपने ही अतीत को किसी झरोखे में झाँककर लिखा गया है । भीष्मजीने इस उपन्यास में मानव मात्र को किस प्रकार से कुंठाओं से मुक्ति मिल सकती है । ऐसी सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण भी किया है । समाजवादी दर्शन को लेकर लिखा गया यह छोटा सा उपन्यास लेखक की

पारिवारिक स्थिति का आभास कराता है । भीष्मजी ने समकालीन परिवेश को बडे यथार्थ और प्रभावपूर्ण रूप में उपस्थित किया है ।

### ५.१.३.१.२ : कड्याँ

'कड्याँ' उपन्यास सन् १९७० में प्रकाशित हुआ था । साहनीजी ने 'कड्याँ' उपन्यास में विवाह संबंधो के बिखराव के कारणो की तलाश की है । विवाह हमारे समाज में सामाजिक जीवन की धुरी रही है । इसमें भी आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की एक उभरती हुई समस्या को केन्द्र में रखा गया है । पति–पत्नी के टूटते संबंध को यथार्थ की भूमि पर बडे ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है । उपन्यास का नायक महेन्द्र विवाह के पश्चात भी पर स्त्री से यौन संबंध रखता है, जिसके कारण पति–पत्नी में निरंतर संघर्ष होने लगता है । उनके दांपत्य जीवन की कड्याँ बार–बार टूटती एवं जुडती है । महेन्द्र एक दफतर में ऑफिसर है । इसी दफतर की कैशियर सुषमा से उसके सम्बन्ध स्थापित होते है और वह सुषमा के प्रेमजाल में फंस जाता है । सुषमा के घर में उसके अपंग पिता है । वह जाति से बंगाली थी । अपने पति महेन्द्र और सुषमा के सम्बन्ध को जानकर पत्नी प्रमिला दु:खी होती है । महेन्द्र भी प्रेमिका सुष्मा के गहराते संबंध के बीच प्रमिला के पति उदासीन रहने लगा था । एक दिन महेन्द्र ने घर में झगडा किया और अपने पुत्र पप्पू के सामने ही प्रमिला पर हाथ उठाया । दाम्पत्य जीवन की दरारे बढती गई और बेबस प्रमिला इसका विरोध व्यक्त न कर सकी । महेन्द्र के सरदार मित्र की पत्नी सतवंत ने इस संबंध को सुधारने की कोशिश की पर वह कायमाब न हो पाई । साहनीजी ने ऐक बेबस और लाचार नारी के जीवन का चित्रण किया है, जो जानबूझकर भी स्थिति को समझने का प्रयत्न कर घर संभालने में पडी हुई है । महेन्द्र की बहन भी अपने भाई का वैवाहित जीवन सुधारने में लगी थी । इस तरह सुषमा अपनी पदोन्नति के लिए डायरेकटर 'वर्मा' की और आकर्षित होती है । सारी स्थिति विपरित हो जाती है । महेन्द्र प्रेमिला को छोड्कर चला जाता है । इस सदमें की वजह से प्रमिला पागल हो जाती है । वह उसी वक्त गर्भवती भी रहती है । उसे पागलखाने भेजकर इलाज करवाया जाता है । जिससे वह ठीक हो जाती है पति महेन्द्र के प्रति वह घृणा

रखती है और दृढनिश्चय करती है कि में नया रास्ता चुनकर बिना महेन्द्र के अपना और अपने बेटे का लालन–पालन करूँगी । प्रमिला अपने पिता के घर को दुकान बना देती है । वहाँ दवाई की दुकान खोलकर नयी राह चुनकर आत्मनिर्भर बन जाती है ।

इस प्रकार इस उपन्यास में प्रेमिला संघर्ष रूपी जीवन को पार करने में कामयाब नजर आती है । और समाज की नारी के सामने यह उदाहरण कायम करती है कि जीवन के संघर्ष से पराजित न होकर अपना अस्तित्व जो टिका पाये वहीं जीवन में सफल होती है ।

### ५.१.३.१.३ : बसंती

१९६० में प्रकाशित हुआ यह उपन्यास परिवर्तित सामाजिक स्थिति और आर्थिक तनाव के बीच आदमी की जिन्दगी को स्पष्ट करता है । यह उपन्यास अगले दोनो उपन्यासों से भिन्न है । इसमें निम्नवर्गीय जीवन को कथा का परिवेश बनाया गया है । यहाँ के लोग गाँवो के सूखा, अकाल और भूखमरी से परेशान होकर शहर में भाग आए है । इन उजड्ते बसते मेहनतकश मजदूरों को देहाती पृष्ठभूमि को इसमें चित्रित किया गया है । दिल्ली में पडोसी प्रांतो से आकर मजदूरी कर कोलोनी का निर्माण करने वाले राज मजदूरों में से एक बेटी बसन्ती को केन्द्र में रखा गया है । जिस प्रकार राजमजदूरो की यह बस्ती उखड्ती और फिर बसती है, उसी प्रकार से धिलंदरी बसन्ती का जीवन भी कई बार बसता और उजड्ता है । उपन्यास के अंत में और आरंभ में बस्ती के उजड्ने के संबंध बसन्ती के जीवन से ही है । चौदह वर्ष की बसंती पर बस्ती के लंगडे दर्जी बुलाकीराम की नजर है । बसंती के पिता को जब इस बारे में पता चलता है तो वह बसंती को बेचने के लिए तैयार हो जाता है । बसंती को शादी के लिए तैयार करना था उसी दिन बस्ती को तोड्ना था । इसलिए चारो और भागदड मच जाती है । लोग बस्ती के पास पाँच मील दूर खुले मैदान में चले जाते है । लोग यह समझते है कि यह जगह उन्हें झोपडे बनाने के लिए दी गई है । बस्ती तूटने पर लोग इधर–उधर अलग हो जाते है जात–बिरादरी वाले बिखर जाते है । इस जगह से बुलाकीराम से बसंती की शादी नहीं हो सकी । उस दिन के बाद बुलाकीराम भी नजर न आया था । चौधरीने बस्ती के पास नाई की दुकान खोली थी । बसंती श्यामाबीबी के घर

चौके–बर्तन का काम करती है । उसके संगत में बसंती आधुनिक परिवेश में भी ढलने लगती है । बसंती की मुलाकात दीनू के साथ होती है । बसंती और दीनू भाग जाते है । दीनू बसंती को होस्टेल के एक कमरे में छिपाकर रखता है । वहाँ दीनू खाना बनाने का काम भी करता है । दोनो भगवान की तस्वीर के सामने शादी कर लेते है । दीनू की असलियत बसंती के सामने आती है कि वह शादीशुदा है । बसंती को दीनु यह समझाता है कि मेरी जाति में दो–तीन शादियों का रिवाज है । बसंती और दीनू को दूसरा नौकर मंगलू होस्टेल में देख लेता है । जिसकी वजह से दीनू की नौकरी छूट जाती है । दीनू और बसंती दीनू के दोस्त बरडू की खोली में रहने जाता है । वहाँ दीनू बसंती को बरडू के हाथ ३०० रूपये में बैच देता है बसंती वहाँ से भाग अपने जीजा के घर जाती है । वहा पर भी इज्जत पर आँच का खतरा देख भागना पडता है । भागती फिरती बसंती को उसके पिता ले जाकर पन्द्रहसो रूपये में बुलाकीराम को फिर बेच देते है । बसंती को चेन और सुकून मिलता है कि अब किसी बात की चिंता नहीं है । जब बुलाकी के साथ बसंती और उसका बेटा पप्पू बाजार जाते है वही दीनू के साथ फिर भाग जाती है । बुलाकीराम चिल्लाता रह जाता है । बसंती और दीनू की पहली पत्नी रूकमी साथ रहते थे । बसंती जो कमाती थी उसी से घर चलता था । बसंती को दीनू परेशान करता है, मारता है, बात–बात पर झगडा करता है । लेकिन दीनू का पप्पू के प्रति प्रेम देखकर बसंती कहती है कि वह मेरे साथ भले जैसा भी व्यवहार करे, पप्पू को तो चाहता है । ऐसी संघर्षशील परिस्थिति में बसंती भारतीय नारी का प्रतिबिंब प्रदर्शित करती है । इसी बीच बुलाकीराम बसंती के विरूद्ध मुकदमा दाखिल करता है । दीनू और बसंती मुकदमा जीत जाते है । बसंती और रूकमी के बिच दरार पैदा हो जाती है । बसंती तंदूर लगाने के बारे में सोचकर काम करने में लग जाती है । दीनू और रूकमी गाँव चले जाते है । और बसंती पप्पू का पेट पालने के बारे में सोचती है । तभी पुलिस द्वारा पटरी पर बैठने वालो को भगाने का शोरगुल सुनाई देता है । इस प्रकार निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण और संघर्षमय जीवन की गाथा साहनीजीने चौदह दृश्यो में विभाजित कि है ।

### ५.१.३.१.४ : कुंतो

कुंतो सन् १९९३ में भीष्मजी का पारिवारिक जीवन से संबंधित उपन्यास है । कुंतो उपन्यास के केन्द्र में कुंतो नामक स्त्री है । जिसमें कुंतो के माध्यम से भारतीय समाज में नारी की स्थिति को ही परिभाषित करने का प्रयास किया गया है । उपन्यास के आरंभ में पारिवारिक माहौल का वर्णन किया है । कुंतो उपन्यास उन्नीस खंडो में विभाजीत है । उपन्यास में जयदेव, कुंतो, सुषमा, गिरीश के आपसी संबंध है जिनमें उनकी निजी भावनायें, आशायें और अपेक्षायें हैं । प्रोफेसर साहब जयदेव को अपना प्रिय शिष्य मानते थे । जयदेव भी प्रोफेसर साहब की हर बात मानता था । प्रोफेसर साहब के तीन भाई और दो बहन थी । प्रोफेसर साहब की तमन्ना थी कि जयदेव का ब्याह उनकी बहन कुंतो से हो । पर जयदेव अपनी मौसेरी बहन की और आकृष्ट था । उसकी मौसेरी बहन का नाम सुषमा था । सुषमा इस बारे में कुछ नहीं जानती थी । प्रोफेसर साहब कुंतो से मिलवाने के लिए जयदेव को अपने घर ले जाते है । कुंतो का परिचय करवाते है । कुंतो की सगाई जयदेव से हो जाती है । जयदेव की माँ जयदेव के मन को जान चुकी थी । जयदेव से कहती है, ''अगर तेरा सुषमा के साथ उन्स हो गया है, और तू उसके साथ ब्याह करना चाहता है तो बता दे । सारी दुनिया एक तरफ और मेरे बेटे की खुशी एक तरफ, मैं जैसे भी होगा तेरा साथ दूंगी ।''[४७] धीरे–धीरे जयदेव कुंतो को पसंद करने लगता है । और बाद में इन दोनों की शादी करा दी जाती है । प्रोफेसर साहब का छोटा भाई सिंगापुर से लौटा तो सिंगापुरवाली प्रेमिका की याद और तसवीर साथ लेकर आया । उसी शैली में वह रेहने लगा की उसकी बजह से धनराज और उसकी पत्नी के बीच द्वन्द्व शुरू हो गया था । प्रोफेसरसाहब इस स्थिति को संभाल नहीं पाए थे कि जयदेव उनसे महावरा लेने आया कि वह सुषमा को भुला नहीं पाया । प्रोफेसरसाहब उसे समझाते है । गिरीश और सुषमा की शादी तय हो जाती है । पर शादी हो नहीं पाती है, क्योंकि गिरीश अपनी मौसेरी बहन गतिविधि की और आकृष्ट था । गिरीश के व्यवहार से दु:खी सुषमा शांतिनिकेतन चली गई । वहाँ संगीत–साधना शुरू कर दी । अचानक गिरीश शांतिनिकेतन एक गोष्टि में गया था और पता लगाते हुए सुषमा से मिलता है । गिरीश कहता है कि हमारा चले आना आपको अटपटा लग रहा है । हम चले आए माँ केवल आपकी

कुशल क्षेम पूछने आए थे । आपको परेशान करने नहीं आए है ।''[४८] उपन्यास में भारत देश की आजादी के आंदोलन की घटना को भी शामिल किया गया है । जयदेव और कुंतो का एक साल का बेटा था । और जयदेव की बहन विद्या के चार संतान थे जिनसे जयदेव तिलमिला उठा क्योंकि शादी के सात साल में चार संतान हुए थे । विद्या गर्भवती थी और जयदेव यह न जानता था । इस गर्भपात के चक्करमें विद्या स्कूल से कूदकर बच्चा गिराना चाहती थी । खुद अपनी जान गँवा बेठी । इन बच्चों का बोझ जयदेव की माँ पर आन पडा । सहदेव जो जयदेव का छोटा भाई था वह देश के स्वतंत्रता आंदोलन में जुड जाता है । वही कुंतो का शरीर रात–दिन की भागम्भाग में जर्जरित हो जाता है । उसे डॉक्टरने काम करने को मना किया था फिरभी वह काम नहीं छोड्ती है । जब उसे पता चलता कि उसके जिजाजी बम्बई आ रहे है । वह उन्हें लेने के लिए स्टेशन जाती है । वहाँ उसकी साँस फूल जाती है । अंत में वह जयदेव की गोद में दम तोड देती है । उपन्यास का अंत आजादी से होता है । जहाँ भारत–पाकिस्तान दो सीमाओं में बँट चुके थे । दूसरी आजादी कुंतो के जीवन की .....

### ५.१.३.२ : सांप्रदायिक उपन्यास

प्रवर्तमान युग में कुछ ऐसे लोग भी है, जो धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलाने का कार्य करते हैं । विशेषकर कुछ ऐसे राजनीतिक लोग है, जो जनता को धर्म की बात कहकर भड्काते है और आपस में साम्प्रदायिकता बढाते है ऐसे लोग गाय जैसे पशुओ को भी नहीं छोड्ते। गौ सेवा के नाम पर लोगो का झगड्ना, संप्रदाय के नाम पर झगड्ना और अपना स्वार्थ बना लेना । धर्म के नाम सांप्रदायिकता जोड्कर अपने स्वार्थ को साधना ही ऐसे लोगो का मुख्य कार्य होता है । साहनीजी ने सांप्रदायिकता फैलानेवाली शक्तियों को पहचाना है और जनता के सम्मुख इन शक्तियों को पहचाना है और जनता के सम्मुख इन शक्तियों का पर्दाफाश भी किया है उन्होंने सांप्रदायिकता को बढावा देनेवाली राजनीतिक शक्ति का भी विवेचन किया है । समाज में बहुत से ऐसे तत्त्व है, जो जनता में धार्मिक संकीर्णता का बीजारोपण करते है । साहनीजी ने

ऐसे तत्त्वो की और अंगुली निर्देश करके उसका सफल यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है । सांप्रदायिकता का दर्शन करानेवाले ऐसे २ उपन्यास का हम परिचय प्राप्त करेगें ।

### ५.१.३.२.१ : तमस

दो खंडो में विभाजित १९७३ में प्रकाशित हुआ तमस उपन्यास भारत विभाजन की मानवीय त्रासदी पर केन्द्रित है । वह उपन्यास एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में है अपनी स्वार्थ–पूर्ति और कूटनीति के द्वारा हिन्दू–मुस्लिम को आपस में लडाकर अंग्रोज ने वर्षो तक इस देश पर शासन किया । साहनीजी ने १९४७ की आजादी पूर्व के सांप्रदायिक दंगो को चित्रित किया है । यह उस समय की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का पूर्ण परिचय देता है । भारत विभाजन पर कई उपन्यास लिखे गये है, जिनके बारे में डॉ. कृष्णा पटेल कहते है कि, ''खुशवंत सिंह का अंग्रेजी उपन्यास 'ए ट्रेन टु पाकिस्तान', यशपाल का 'झूठा–सच', 'रामानंद सागर का' और 'इंसान मर गया', राही मासूम रजा का 'आधागाँव', श्री गुरूदत्त का 'देश की हत्या', आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'धर्म पुत्र' कमलेश्वर का 'लौटे हुए मुसाफिर', नासिर शर्मा का 'ढाईघर' आदि कथाकारों ने विभाजन की त्रासद पीडा को लेकर उपन्यास लिखें । इसके बाद भी कृष्नचंदर, अमृता प्रीतम, उपेन्द्रनाथ अश्क, कृष्णा सोबती, करतासिंह दुग्गल, सआदतहसन मंटो, राजेन्द्रसिंह बेदी, रामशेरसिंह नरूलो आदि कथाकारोंने भी मानवी घृणा, सामप्रदायिकता एवं नृशंसता–पशुता की कहानी अपने–अपने ढंग से लिखी है।''[४९] सांप्रदायिकता का माहौल और उसमें एक घटना सुअर मारकर मस्जिद के सामने फेंक देना । वही घटना सारे फसाद करवाती हैं । उसमें पूरे १०४ गाँव नष्ट हो जाते है । अंग्रेज इस स्थिति का फायदे उठाने में कामयाब हो जाते है । मनोज शर्मा इस उपन्यास के बारे में कहते है कि,''इस उपन्यास में अबोध मानसिकता और उदमता है । भीड और उसकी अराजकता है । आग है और गंदी राजनीति की सडांध है । मानवीयता है और दंगा करानेवाले दिमाग है । मौका परस्ती और कठिन समय में साथ खडे हम साये हैं । जड्ता और जद्दो जहद है। इतिहास बोध है । वर्ग संघर्ष है । गहराते अंधेरे है । रूग्ण मानसिकता है । हवा है, जो खिलाफ है । और खिलाफ हा गुजरती उम्मीद है, आवाज है,

जुनीन है, 'तमस' कई तरह से हमारा साक्षात्कार उस सत्य से कराता है जो न चाहते हुए भी हमारे आस पास है, ऐसा सच जो आम पंजाबी को किसी न किसी तरह से खींचकर स्मृतियों में ले जाता है।''[५०] यह उपन्यास नाट्यपूर्ण है । जिसमें 'नत्थु चमार' नामका आदमी एक सुअर को मार देता है। इस काम को करने के लिए उसे कमेटी के कारिंदे 'मुराद अली' पाँच रूपये का नोट देते है । मुरादअली के कहने पर नत्यु चमार द्वारा मारा गया सुअर मस्जिद के सामने फेंक देता है । इसी घटना से हिन्दू और मुसलमानों के बीच दंगे होते है । दोनो समाज आपसमें लड्ते–झगड्ते है । जिसमें हिन्दू संप्रदाय अपना आपा खो बेठता है और दोनो संप्रदाय एक–दूसरे की हत्या और लूटमार में लग जाते है । हिन्दू संप्रदायवाले मुसलमानों के विरोध में अभियान छेड देते है । मुसलमान भी जोरो से अपना विरोध प्रदर्शित करते है । दंगो में मुस्लिम गाय को काटकर मन्दिर और धर्मशाला के सामने फेंकने लगे । तनाव बढता ही गया । उपन्यास में प्रभातफेरी की घटना, दंगे, ग्रामो में फैले सांप्रदायिक दंगे, झूठी अफवाये, द्वेष में भी भाईचारे की भावना, हिन्दू–मुस्लिम और अंग्रेज, मुस्लिमों का भारत में आगमन, भारत में मुस्लिम का फैलना, हिन्दू–मुस्लिम का टकराव, राजनीति का खोखलापन आदी मौजूद है । इन सारी घटना को लेखक ने छोटे–छोटे प्रसंगो के माध्यम से बतलाया है । 'तमस' की कथा का प्रवाह निरंतर गतिमान होता है । साहनीजी ने कथा में सारे प्रसंग इस तरह बया किये है कि कोई भी घटना या प्रसंग दूसरे प्रसंग पर भारी न पडे । साहनीजी खुद तमस के बारे में लिखते है कि, 'सहिन्दी कथा साहित्य में बहुचर्चित यह उपन्यास वस्तुत: लोगो को लडाने वाली धार्मिक कट्टरता, अज्ञान, असहिष्णुता और इनकी आड में अपनी वर्गीय स्वार्थ सिद्ध करती राजनीतिक ताकदों के खिलाफ उठायी गई एक अविस्मरणीय आवाज है।''[५१] इस प्रकार 'तमस' विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटना का संघर्षयुक्त किमती दस्तावेज है । इस दस्तावेज में उन लाखों लोगो की गवाही है जो अपने ठिकानों से उझड गये ।

### ५.१.३.२.२ : नीलू नीलिमा नीलोफर

सन् २००० में प्रकाशित हुआ यह उपन्यास साहनीजी का अंतिम उपन्यास है । समर्पित करने के रूप में साहनीजी ने इस उपन्यास को 'आखिरी जाम' कहकर नवाजा है । इस उपन्यास में साहनीजी ने तीन नाम प्रयुक्त किये है । प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में दो सहेलियाँ नीलिमा और नीलोफर है । दोनो हिन्दू और मुस्लिम संप्रदाय से है । पर दोनो को घर पर नीलू नाम से पुकारा जाता है । साहनीजी ने स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद, लम्बे समय तक हिन्दू–मुस्लिम संप्रदाय की सोच को सामने लाने का प्रयास किया है । उपन्यास में प्रेमकथा को ही केन्द्र में रखकर सांप्रदायिकता को भी सामने लाती है । उपन्यास में मुस्लिम परिवार की नीलोफर हिन्दू परिवार के लड्के सुधीर से प्रेम करती है। नीलोफर की सहेली नीलिमा की मैत्री मुसलमान युवक अल्ताफ से हो जाती है । नीलीमा और सुधीर के प्रेम के बीच संप्रदाय की दीवार बाधक है । सबके मना करने के बवाजूद सुधीर और नीलिमक शादी कर लेते है । शादी के बावजूद धर्म संप्रदाय में बटे ये दम्पती वैवाहिक जीवन में सुख नहीं पा सकते । नीलीमा का भाई उसे धोखे से अपने साथ ले जाता है । बच्चा गिवारकर नीलीमा की शादी अधेड उम्र के मुसलमान के साथ कर देता है । इस तरह अल्ताफ से प्रेम करने वाली हिन्दू युवती नीलिमा परिवार की खुशी के लिए सुबोध नामक हिन्दू लड्के से विवाह करने का फैसला ले लेती है । हिन्दू युवक सुबोध के साथ समझोते के साथ शादी करनेवाली नीलिमा खुश नहीं रह पाती। सुबोध नीलिमा को बार–बार अपमानित करने की कोशिश करता रहता है । वह नीलिमा को अपने इशारे पर नाचने को कहता है । परिस्थितिवश नीलिमा मन ही मन सोचती है कि इस जीवन से अच्छा तो कसाई की दुकान पर मृत मुर्गी का जीवन है । नीलमा इसी बोझ को तोड्ने का रास्ता ढूँढ निकालती है । वह रास्ता है आत्महत्या । नीलिमा आत्महत्या के द्वारा अपने तनावयुक्त जीवन से मुक्त हो जाती है । इस उपन्यास का अंत खडा रह जाता है एक प्रश्न के बलबूते पर । जब नीलिमा नीलू यानि की नीलोफर को खत लिखती है । नीलिमा के जीवन का यह लंबा पत्र नीलोफर को मिलता भी है या नहीं इस बात के जीक्र के बिना उपन्यास समाप्त हो जाता है । दो संप्रदायिक दीवार के जोडे की यह संघर्षमय गाथा है। साहनीजी का उपन्यास का हेतु साफ लक्षित है। साहनीजी के इस

उपन्यास के बारे में प्रकाश मनु ने लिखा है, '' नीलू नीलिमा नीलोफर जिसे देखकर थोडी निराशा हुई। साम्प्रदायिकता की समस्या को जिस 'तमस' में लिखकर भीष्मजी चरम तक पहुँचा चुके थे, उसी को नीलू नीलिमा नीलोफर में फिर कच्चे ढंग से छेड्ने की नुक नहीं थी।''[५२] इस प्रकार साहनीजी ने सांप्रदायिक दंगो पर जो उपन्यास लिखे उनकी योगदान को स्पष्ट करता विधान मनुजीने लिखा है । साहनीजी ने प्रवर्तमान युग की संप्रदाय धारा को सामने लाने का प्रयास दुबारा नीलू, नीलिमा और नीलोफर में किया है।

इस प्रकार इस उपन्यास में हम देख सके की आजादी के पचास साल के बाद भी मानवीय संबंध में संप्रदाय का ताना–बाना अभी भी बुना हुआ है ।

### ५.१.३.३ : घटनाप्रधान उपन्यास

लगभग सभी उपन्यासो में घटनाये तो होती है, क्योंकि उन्हीं के द्वारा कथावस्तु का निर्माण होता है । परंतु घटना–प्रधान उपन्यास उन उपन्यासों को कहते है, जिनमें मुख्यत: घटनाओं की प्रधानता होती है उन घटनाओं के द्वारा ही पाठकों की उत्सुकता को जाग्रत करने का प्रयत्न किया जाता है । ये घटनायें प्राय: आश्चर्यजनक होती है । इन्हीं के द्वारा पाठको के हृदयमें विस्मय को जाग्रत करके उन्हें मुग्ध रखा जाता है । घटना–प्रधान उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता उसकी मनोरंजकता है । ऐसे उपन्यासों की कथावस्तु प्रेमखयान पैराणिक कथाओं और जासूसी तथा तिलस्मी घटनाओं से निर्मित होती है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान स्टीवन्स में घटना प्रधान उपन्यासों के सम्बन्ध में लिखा है कि, 'उपन्यासकार की सबसे बडी सफलता इसी में हैं कि वह एक ऐसी भ्रांति की सृष्टि कर दे और रोचक परिस्थितियों को ऐसी कुशलता के साथ अंकित कर दे कि पाठको की कल्पना उनसे आकृष्ट हुए बिना न रह सके और वे उस क्षण के लिए अपने को उस कथा के पात्रो में से एक समझने लगे.....।' इसका तात्पर्य यह है कि घटना–प्रधान उपन्यासों का उद्देश्य केवल कौतुहल और उत्सुकता पैदा करना होता है, परंतु ऐसे उपन्यास बहुत सफल नहीं माने जाते है । ऐसे उपन्यासों की परंपरा में 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता संतति' जैसे उपन्यासों की गणना की जाती है । वैसे तो सभी जासूसी और पैराणिक उपन्यास इसके

अंतर्गत आ सकते है । ऐसे ही घटना प्रधान उपन्यास के अंतर्गत आनेवाला उपन्यास साहनीजीने लिखा है । जिस उपन्यास का शीर्षक है 'मय्यादास की माडी' जिसकी चर्चा हम करेंगे ।

### ५.१.३.३.१ : मैयादास की माडी

मैयादास की माडी उपन्यास सन् १९८८ में प्रकाशित हुआ है यह उपन्यास ३ खंड और १५ अध्याय में विभाजित है । इसमें पंजाब के एक ऐसे कालखण्ड की हानी है, जब ब्रिटिश हुकूमत सिक्ख अमलदारी को कमजोर करते हुए अपना पैर जमा रही थी । साहनीजी ने भारतिय इतिहास की उन घटनाओं को बडी कुशलता से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में लेखक ने चार पीढियों के इतिहास को प्रस्तुत किया है। उपन्यास के विषय में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया है । १९ वी सदी के सिक्खो के इतिहास के उत्थान और पतन के साथ माडी के मालिकों के उत्थान और पतन का चित्रण किया है । एक गाडी और उसके इतिहास के माध्यम से पंजाब का वातावरण अंकित किया है । अंग्रेजो के आगमन का फायदा साहुकार, जमीदार उठाते है । धनपत के माध्यम से यह बात बताई है कि वह अंग्रेजो के प्रति निष्ठा रखता था । सब पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगे हुए दिखाई देते है। वस्तुत: इस उपन्यास के माध्यम से साहनीजीने तीन पीढियों में आये परिवर्तन को भी बतलाया है । उपन्यास में मथुरदास और उसकी पत्नी कस्बे में यथाशक्ति सभी की मदद करते है। कस्बे में उनकी काफी इज्जत है । मथुरदास के दो बेटे है जिनके नाम है मय्यादास और गोकुलदास । मय्यादास कारदार के पद पर नौकरी करते है और अपने बल पर कर्तव्य और निष्ठा से दिन ब दिन प्रगति करते है । वे अपने कार्य से समृद्धि पा लेते है । पिता द्वारा बनवाया गया मकान वह दो मंजिली बना देते है । मय्यादास की मेहनत जितनी रंग लाती है सामने गोकुलदास कुछ नहीं कर सके । गोकुलदास के घर में तीन बेटियोँ का जन्म होने की बजह से वह अपनी पत्नी को मायके भेज देते है । वह थोडे ही दिनो में चंदा नामक स्त्री रखते है और ढाई साल में उसे भी निकाल देते है । चंदा उस वक्त गर्भवती थी । गोकुलदास को समझाने पर वह अपनी पत्नी को घर वापिस बुला लाते है । और माडी में दीवार खडी कर अलग रहने लगते है ।

उपन्यास में खालसा सरकार को मैयादास कर्ज देते है लेकिन सिक्खों के पराजय के कारण उनकी सारी संपति लूट जाती है । चंदा का पुत्र धनपत मैयादास से अपना हक माँगता है । मैयादास दु:खी होकर बेबसी में मर जाता है । मैयादास की माडी को अंग्रेज सरकार नीलाम करते है । जो गुमास्ता मालिक मंसाराम खरीदता है । इस प्रकार अंग्रेज सरकार की नीति को साहनीजीने सामने रखा है । उपन्यास का अंत बडा ही मार्मिक है । कस्बे का जोगा नामक लडका अपनी माँ से कहता है कि गाडी के ऊपर फल्लु बैठा देखा था । माँ विश्वास नहीं करती है । पर बच्चे की बात मानकर वह कहती है कि उनके घर के ऊपर उल्लु नहीं तो क्या तोता–मैना बेढंगी इस प्रकार अंत में गाडी का प्रतीक उल्लू दिखाया है । हुकूमतराय अपने बाप धनपत की तरह अंग्रेज का साथी था । वह खुलेआम सब पर जोर–जबरदस्ती करता, आंतक मचाता रहता था । कोई उसका कुछ बीगाड नहीं पाते थे। उसने लाजो से शादी की थी । उसके आंतक से परेशान होकर लाजो भी आत्महत्या कर लेती है । फिर भी हुकूमतराय बदलता नहीं है । हुकूमतराय अंग्रेजी सत्ता से मिलकर सब पर अत्याचार करवाता है । पर कस्बे की जनता फिरंगियो का विरोध करती है । उसी विरोध के स्वर में उपन्यास की समाप्ति हो जाती है । इस प्रकार हम देख सकते है कि 'मय्यादास की माडी' एक सामाजिक उपन्यास न रहकर नाटकीय ढंग से मानव जीवन के संघर्ष की घटनाएँ बताता है । तीन पीढियों की कथा से व्यापक कथाफलक प्रस्तुत होता है । अंत यह बतलाता है कि जनशक्ति जब भी संगठित होती है दुर्रात्माओं का विनाश निश्चित है।

## ३.२ : निष्कर्ष

इस प्रकार तृतिय अध्याय में हिन्दी कथा साहित्य और साहनीजी के स्थान को देखा । साहनीजी के कथा साहित्य में उपन्यास का दायरा विस्तृत होने के साथ ही साथ सूक्ष्म एवं गहराई लिये हुए है । साहनीजी वर्तमान के लेखक है । वर्तमान के साथ यथार्थ सदैव अपेक्षित होता है । साहनीजी को यथार्थ की गहरी जानकारी है । यथार्थ के साथ जुडे रहने के कारण कोरी भावुक्ता से उन्होने मुक्ति पा ली है । इसी कारण उनके उपन्यासो का परिवेश अत्यन्त व्यापक है। उनके उपन्यासो का संसार न केवल विस्तृत है, बल्कि विस्तृत होने के साथ ही आम आदमी

के साथ जुडा हुआ है। साहनीजी वर्तमान के शिल्पकार है । इसीलिए उनके उपन्यासों का संसार व्यापक और विस्तृत होने के साथ ही साथ विविधतापूर्ण भी है । साहनीजी के उपन्यासों में समकालीन परिवेश का चित्रण हुआ है । मध्यवर्गीय संघर्ष को साहनीजी ने समझा है । मध्यवर्गीय परिवेश के साथ ही साथ उन्होने वास्तविकता का चित्रण प्रस्तुत किया है।

साहनीजी ने अपने उपन्यासो में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया है। ये चित्र निर्जीव चित्र नहीं है, बल्कि इसमें साहनीजी की चेतना सर्वत्र जागृत रही है इसलिए ये चित्र सचित्र बन गये हैं । साहनीजीने सामाजिक समस्याओं का उद्‌घाटन, 'कड्यिाँ', 'बसंती' और 'कुत्तो' में किया है । यद्यपि इस उपन्यास का ढाँचा प्राचीन है, किन्तु साहनीजी ने जिन समस्याओ को उठाया है, वे अत्याधुनिक है । श्रेष्ठ कथाकार कमलेश्वर ने साहनीजी के कथा साहित्य के बारे में कहा है, ''भीष्म साहनी ने अपने कथा–साहित्य में जीवन की सच्चाई को बहुत ही गहराई और सघनता से पेश किया है । हिन्दी कथा में, जो व्याप्ति थी, और जो अभी तक छोटे–छोटे क्षेत्रों में या अंचलों में या मानवीय सम्बन्धो की गुच्छियों में उलझी हुई थी, उसको उन्होंने संवेदना के स्तर पर उठाया और बडे संवेदनात्मक और संवेदना से भरे चरित्र और स्थितियों और उन स्थितियों में छिपा हुआ इतिहास और समाज का दंश उसको उद्‌घाटित किया है ।''[५३] साहनीजी के उपन्यासो में समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रुपताओं तथा विषमताओं पर कटु प्रहार किया है । साहनीजी ने समाज के भीतर घुसकर उसके विविध सत्यों का उद्‌घाटन किया है । समाज तथा राजनीति में व्यक्ति विसंगतियों पर साहनीजी की सूक्ष्म पकड है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के भारत का सम्पूर्ण दर्शन प्रेमचन्दजी की रचनाओं में होता है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत का दर्शन हमें साहनीजी की रचनाओं में ही होता है। यह इतना सहज एवं आसान नहीं है, बल्कि इसके लिए सूक्ष्म अवलोकन दृष्टि चाहिए । इसी कारण हम कह सकते है कि साहनीजी के उपन्यास न केवल रूचिकर बल्कि पत–प्रदर्शक भी है । यह सर्वथा सत्य है कि साहनीजी के उपन्यास तत्‌कालीन समाज का दर्पण है– जिसमें हम समाज के अनेकानेक चित्र देख सकते है । साहनीजी चतुर चितेरे की भाँति स्थिति का अवलोकन करके उसकी तस्वीर प्रस्तुत करते है । इसी लिए उनके चित्र यथार्थ और सजीव होते है ।

सारांशत: कहा जा सकता है कि साहनीजी के कुल ७ उपन्यास बडे ही रोचक एवं सद्‌श्य है । यहाँ कथानक पर दृष्टिपात करे तो कथ्य और शैली की प्रौढता क्रमश: देखी जा सकती है । प्रथम उपन्यास 'झरोखे' की कथा का प्रस्तुतिकरण जहाँ सीधा और सरल है वहीं अंतिम उपन्यास नीलू, नीलिमा, नीलोफर सांप्रदायिकता की धरोहर पर खडे युवानो की कथा है। वैसे उपन्यास की सीमायें अनेको होती है और उसी प्रकार उनका रूप उनके लेखन की आवश्यकताओं के अनुकूल विद्या निबन्ध है, जिसे ये पहचान चुके थे, क्योंकि निबन्ध लिखने में लेखक के विचारों को स्वतंत्रता मिलती है । इसी कारण साहनीजीने इन उपन्यासो को लिखने के बाद जान लिया कि उपन्यास विद्या उनकी सोच को आगे ले जाती है । साहनीजी का हिन्दी साहित्य के उपन्यास क्षेत्र में बहुत बडा योगदान है । उनके 'तमस' उपन्यास ने ही यह साबित कर दिया है । साहनीजी एक चैतन्य रचनाकार है तथा गद्य की सभी विद्याओं पर उन्होंने सफलतापूर्वक लेखनी चलायी है ।

# संदर्भसूची


१) कथाकार हरिशंकर परसाई – पृ.२६५ एक अध्ययन डॉ. वखतसिंह गोहिल पृ.१९५

२) वही, पृ.१९५

३) वही, पृ.१९६

४) वही, पृ.१९६

५) वही, पृ.१९७

६) वही, पृ.१९८

७) वही, पृ.१९९

८) वही, पृ.१९९

९) वही, पृ.२०१

१०) हिन्दी साहित्य समीक्षा, डी. वखतसिंह गोहिल, पृ.१२

११) वही, पृ.१३

१२) वही, पृ.१५

१३) वही, पृ.१७

१४) वही, पृ.२५

१५) वही, पृ.२७

१६) वही, पृ.२८

१७) अपनी बात – भीष्म साहनी, पृ.८०

१८) भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना, पृ.४६

१९) वही, पृ.२०

२०) वही, पृ.१०

२१) भीष्म साहनी की कहानी कला, अर्चना जैन, पृ.६९

२२) हिन्दी साहित्य समीक्षा डॉ. वखतसिंह गोहिल पृ. १००

२३) वही, पृ.१०१

२४) वही, पृ. १०१

२५) कथाकार हरिशंकर परसाई : एक अध्ययन, डॉ. मोहित – पृ.,१६६

२६) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य – डॉ. महेन्द्र भटनागर– पृ.४

२७) हिन्दी का पहला उपन्यास – 'परीक्षागुरू' – श्रीप्रकाश–पृ.,१२

२८) प्रेमचंदपूर्व हिन्दी के जासूसी व तिलस्मी उपन्यास – डॉ.कृष्णा मजीठिया – पृ.२३

२९) हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृतियाँ –डॉ. शिवकुमार शर्मा

३०) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य – डॉ. महेन्द्र भटनागर–पृ.,६१६

३१) हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृतियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा – पृ.६१६

३२) प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास – डॉ. शिवकुमार मिश्र– पृ.६७

३३) द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. वार्ष्णेय– पृ.६७

३४) विवेक के रंग – नेमीचन्द जैन– पृ.२९७

३५) हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा– पृ.६३०

३६) हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास – राजनाथ शर्मा– पृ. ८२

३७) हिन्दी साहित्य – प्रवृत्तिपरक इतिहास – रामप्रसाद मिश्र– पृ. २३३

३८) हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा– पृ. ६३६

३९) हिन्दी साहित्य युग – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा–पृ.६३० डॉ. गणेशन का संदर्भ

४०) हिन्दी साहित्य समीक्षा – डॉ. वखतसिंह गोहिल – पृ. १०८

४१) कथाकार भीष्म साहनी – डॉ. कृष्णा पटेल– पृ.४५

४२) वही, पृ.४५

४३) वही, पृ.४५

४४) वही, पृ.४६

४५) झरोखे, भीष्म साहनी, पृ.२२

४६) वही, पृ.२२

४७) कुंतो– भीष्म साहनी, फलैप से – पृ.७३

४८) वही, पृ.२९९

४९) कथाकार– भीष्म साहनी – कृष्णा पटेल– पृ.४१

५०) नाटककार – भीष्म साहनी, डॉ. सुरैय्या शेख, पृ.२१

५१) भीष्म साहनी तमस के अंतिम पृष्ठ से प्रकाशकीय वक्तित्व में

५२) भीष्म साहनी की कहानियों में मानवीय संबंध – डॉ. संजय गडंपायल– पृ.५३

५३) भीष्म साहनी की कहानियों में व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ. भारत कुचेकर– पृ.४६